पशुधन ज्ञान

वर्ष : 4 | अंक : 01 | जनवरी, 2018 | अर्धवार्षिक, हिसार | शुल्क : ₹30/-

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार - 125004 (हरियाणा)

प्रकाशक:

डॉ. आर.एस.श्योकन्द

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार-125004 (हरियाणा)

सम्पादक:

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डल:

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. विशाल शर्मा

डॉ. स्नेहिल गुप्ता

प्रकाशक: डॉ. आर.एस. श्योकन्द, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जनवरी, 2018 को प्रकाशित किया।

निर्देश: इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्रॉंडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

डॉ. गुरदयाल सिंह
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया: कृषि कार्यक्षेत्र पर आधारित है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। पशुपालन के बिना देश की खाद्य व्यवस्था का प्रबंधन बहुत कठिन है। सच तो यह है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होते कृषि क्षेत्र ने आज पशुपालन को अत्याधिक प्रगतिशील क्षेत्र बना दिया है। पिछले कुछ दशकों में पशुपालन व्यवसाय में निरंतर वृद्धि देखने को मिली है। 19वीं अखिल भारतीय पशुधन-गणना के आंकड़ों के अनुसार सन् 2012 में भारत में पशुधन की संख्या 512 मिलियन थी। इसी के परिणाम स्वरूप हमारा देश विश्व में अधिकतम दुग्ध उत्पादक देश बना है। विश्व के कुल दूध उत्पादन के 13.1 प्रतिशत भाग का श्रेय हमारे देश को ही जाता है। परन्तु फिर भी भारत में प्रति व्यक्ति 252 ग्राम दूध ही उपलब्ध है, जो कि 265 ग्राम प्रति व्यक्ति विश्व की औसत से कम है।

बड़े हर्ष का विषय है कि हरियाणा प्रदेश में वर्ष 2014-15 में कुल 79 लाख टन दुग्ध उत्पादन हुआ जिस कारण हरियाणा के प्रति व्यक्ति को हर दिन 805 ग्राम दूध की उपलब्धता थी, जो विश्व की औसत से बहुत अधिक है। वर्ष 2015-16 में प्रदेश में दुग्ध उत्पादन और भी बढ़ कर 83 लाख टन हो गया है तथा अब हर दिन प्रति व्यक्ति 835 ग्राम दूध की उपलब्धता हो गई है। हरियाणा में इस प्रकार दुग्ध उत्पादन में एक वर्ष में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि विश्व स्तर पर औसत वृद्धि केवल 3 प्रतिशत के लगभग आँकी गई है।

पशुजन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता निरन्तर बढ़ रही है। वर्ष 2009-10 के आँकड़ों के अनुसार, हरियाणा में पशुधन क्षेत्र का उत्पादन लगभग 18,000 करोड़ रुपये था जो कि खेती-बाड़ी उद्योग के सकल उत्पाद 37,000 करोड़ रुपये का लगभग 50 प्रतिशत था। इस क्षेत्र में किसानों की अपार सफलता की सम्भावना को देखते हुए हमारे विश्वविद्यालय द्वारा पूरे प्रदेश के किसानों के ज्ञान व कौशल वर्धन के लिए बड़े पैमाने पर कार्य किया जा रहा है। विस्तार शिक्षा निदेशालय की इन कार्यों में विशेष भूमिका है।

विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित पशुधन ज्ञान पत्रिका वास्तव में वैज्ञानिकों के शोध, ज्ञान, विचार, परामर्श व अन्य लाभप्रद जानकारियों का विशाल स्रोत है। इस पत्रिका के नए अंक के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक, पत्रिका के सम्पादक व विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं। किसान वर्ग, पशुपालक व पशु उत्पादों से सम्बंधित व्यवसायिओं से मेरा निवेदन है कि वे पत्रिका में दी गई जानकारियों को स्वयं संचित कर अन्य जनमानस में भी बाँटे ताकि यह ज्ञान शिक्षित और अशिक्षित सभी को लाभान्वित कर हमारे उद्देश्य की पूर्ति करे।

(गुरदयाल सिंह)

डॉ. आर.एस. श्योकन्द
निदेशक, विस्तार शिक्षा
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

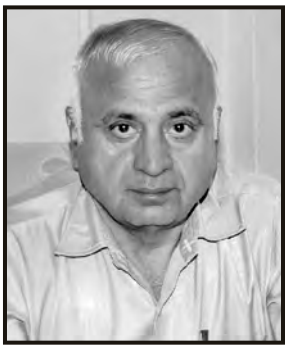

संदेश

पर्यावरण में निरन्तर हो रहे परिवर्तन और कम होती जा रही कृषि योग्य भूमि के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति पर बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विषम परिस्थितियों में कृषि के साथ-साथ पशुपालन अपना कर किसान अधिक आय अर्जित कर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में नकद लाभ और लगातार आय का पशुपालन से बढ़िया और कोई विकल्प नहीं है। आज के युग में कृषि के विविधिकरण का बहुत महत्त्व है। आवश्यकता है कि कृषि के साथ-साथ किसान भाई पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन व पशुओं से प्राप्त होने वाले अन्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन को व्यावसायिक रूप से अपनाएँ। हरियाणा प्रान्त ने प्रारम्भ से ही पशुपालन क्षेत्र में बहुत उन्नति की है।

कई बार लाभदायक होते हुए भी पशुपालन विषय पर वैज्ञानिक जानकारी न होने के कारण पशुपालकों को पूरा आर्थिक लाभ नहीं मिल पाता है। इसलिए कृषक वर्ग के लिए यह अति आवश्यक है कि उसे पशुपालन क्षेत्र में तकनीकी विकास की नवीनतम व लाभदायक जानकारी प्राप्त करवाई जाए। पशुपालकों के उत्थान में लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिकों का सराहनीय योगदान रहा है। जागरुक पशुपालक वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर आर्थिक रूप से लगातार सक्षम बन रहे हैं, परन्तु बहुत से पशुपालक ऐसे भी हैं, जिन्हें इन आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान नहीं है। ऐसे किसानों को यह समझना चाहिए कि उन्नत वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाएँ बिना केवल परम्परागत तरीकों से कोई भी व्यवसाय विकसित रूप प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है।

पशुपालन के क्षेत्र में उच्चतम कोटि के तकनीकी विकास की आवश्यकता को देखते हुए विश्वविद्यालय अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं में पशुओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर अनुसंधान कर उनके निवारण में कार्यरत है। यहाँ देश-विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक किसानों की उन्नति के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्तमान अंक पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि इसके द्वारा पशुपालन से सम्बंधित हर प्रकार का ज्ञान पशुपालकों के घर-घर पहुँचेगा।

कृषक भाईयों व बहनों से विनम्र निवेदन है कि वे इस पत्रिका से अर्जित ज्ञान को अपना कर अन्य किसान पशुपालकों को भी बांटें। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों, सहयोगी अधिकारियों व सम्पादकीय मण्डल का धन्यवाद करते हुए आग्रह करता हूँ कि वे भविष्य में भी इस पत्रिका द्वारा पशुपालकों को लाभान्वित करने में सदैव तत्पर रहें।

(आर.एस. श्योकन्द)

सम्पादक की कलम से...

किसान भाईयों, प्राचीन काल से ही मानवीय सभ्यता के विकास में पशुओं का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साल दर साल समय बदलता गया सभ्यता के विकास में शताब्दियों से निरंतर बदलाव होता गया। लकड़ी के घूमते चकरे ने बड़े भारी भरकम विमानों का रूप ले लिया फिर भी बैलगाड़ी, घोड़ा–घाड़ी और अन्य पशुओं का महत्त्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। आधुनीकरण के वर्तमान युग में भी हम दूध–दही, मक्खन, पनीर, गोश्त, अण्डे व ऊन आदि भौतिक वस्तुओं के लिए पशुओं पर निर्भर हैं। वास्तव में वास्तविकता तो ये है कि हमारी खाद्य व्यवस्था ही न संभले यदि पशुपालन न किया जाए तो, क्योंकि बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण और भूमंडलीय विपदाएँ जैसे अकाल, बाढ़ आदि में पशुधन ही आर्थिक संकट से निपटने का सस्ता और सरल साधन है। कृषि के साथ आसानी से होने के कारण इस पर खर्चा भी कम होता है। वैसे भी बढ़ती जनसंख्या के साथ हमारी जमीन बढ़ने वाली है नहीं। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवारों में सदस्य तो बढ़ते हैं पर किसान के पास उनको बाँटने के लिए प्रर्याप्त भूमि सम्पदा नहीं होती। कम कृषि भूमि में कृषि के साथ पशुपालन ही किसानों का एक अच्छा सहारा बन सकता है। जिससे वह घर की आर्थिक जरूरतें पूरी कर सकता है।

मनुष्य पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्राणी है, यदि मानव जाति पशुपालन से लाभ कमाने के लिए अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेकर प्राचीन रुढ़िवादी तरीकों से हट कर नये वैज्ञानिक तरीकों से पशुपालन करें तो भाईयों इसमें कोई शक नहीं कि वह पशुपालन में भी पैसा और नाम दोनों प्राप्त कर सकता है। हमारे विश्वविद्यालय द्वारा लगाए गए समय–समय पर मेलों और प्रदर्शनियों में उन्नत पशुपालकों को सम्मानित भी किया गया है। अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं में उनका नाम भी हुआ है। हमारी महिला बहनें पशुधन की सेवा बड़े ही सेवाभाव से करती हैं।

भारत में पशुपालन से सम्बंधित बहुत से विश्वविद्यालय हैं, जिनमें लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार भी बहुत विख्यात है। इस विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पशुपालन से सम्बंधित अनेकों शोध कार्य किए हैं, जो पशु प्रजनन, पशु नस्ल सुधार, पशु आवास, पशु आहार व घातक बीमारियों के निवारण से जुड़े हुए हैं। इन शोध कार्यों के द्वारा जनकल्याण की भावना को बढ़ावा देना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

हमारे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक सोच केवल हम तक न रहे, इस उद्देश्य को सम्मुख रख इस सोच और नई तकनीक को घर–घर पहुँचाने के लिए इस ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के रूप में संचित कर दिया है। आपको यह जानकर भी खुशी होगी कि इस संचित ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के अंक के रूप में आपके पठन–पाठन लायक बना कर प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पत्रिका में पशु नस्लों की जानकारी, नस्ल सुधार, पशु आवास प्रबंधन, पशु आहार प्रबंधन विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, टीकाकरण, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु–विषाणु जनित रोग, दुग्ध और माँस उत्पादन, सफल पशुपालक की कहानी आदि विषयों पर जानकारी आपको मिलेगी। यह पत्रिका आपके लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक व उपयोगी सिद्ध होगी। मेरा पशुपालकों से करबद्ध निवेदन है कि पत्रिका में बताई गई दवाइयों को चिकित्सक की सलाह लेकर ही पशुओं को दीजिए।

अन्ततः मुझे आशा है कि यह पत्रिका किसानों, पशुपालकों व पशुपालन से जुड़े व्यवसायिक समुदाय के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी। मैं इस पत्रिका के वर्तमान अंक के सफल प्रकाशन के लिए कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण और संपादकीय मंडल का बहुत–बहुत आभार प्रकट करते हुए हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

(देवेन्द्र सिंह)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1.	परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों का मशीनीकृत उत्पादनः अवसर और चुनौतियां	योगेंद्र सिंह यादव, सोमवीर, सुरेश कुमार	1
2.	डेयरी प्रौद्योगिकी में अवसर	विपुल जागलान, संदीप दुहन एवं योगेंद्र सिंह यादव	5
3.	पारपंरिक भारतीय डेयरी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए परिवर्तनात्मक रणनीति	विपुल जागलान, संदीप दुहन एवं वकील नागर	8
4.	पशुओं में अल्ट्रासाउंड का महत्त्व	रविदत्त, ज्ञानसिंह एवं विनय यादव	10
5.	पशुओं में आफरा : कारण व बचाव	सूदीप सोलंकी, संध्या मोरवाल एवं राजेश सिंगाठिया	12
6.	पशुओं में सर्रा रोग	नीलम, वी.के. जैन, एवं जय भगवान	14
7.	पशुओं में गलघोटू रोग	नीलम, वी.के. जैन एवं रिक्की झाम्भ	16
8.	पशुओं में पटेरा रोग : बचाव व रोकथाम	विनय यादव, अमरजीत एवं सुभाष चंद गहलोत	18
9.	पशुओं में जोहन्स रोग (पेराटुबरकुलोसिस): लक्षण एवं रोकथाम	शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान	20
10.	वैज्ञानिक तरीके से बछड़े की देखभाल व प्रबंधन	अमित, सुभाशिष साहु एवं दिपिन चन्द्र यादव	21
11.	पशुओं में फ्लोरोसिसः कारण एवं लक्षण	ज्योत्सना मदान एवं मीनाक्षी गुप्ता	25
12.	पशुओं में पीपीआर रोग : लक्षण, निदान एवं रोकथाम	शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान	28
13.	गाय एवं भैंसों में गर्भपात की समस्याएं, कारण, निदान व रोकथाम	अमरजीत बिसला, विनय यादव एवं रविदत्त	29
14.	एफ्लाटॉक्सिनः किसानों की आर्थिक प्रगति में अवरोधक	संजय कुमार भारती, अनीता एवं शालिनी अरोड़ा	34
15.	पशुओं में एनाप्लाज्मोसिस रोग तथा निवारण	एस.के. गुप्ता, स्नेहिल गुप्ता एवं सत्यवीर सिंह	36
16.	शुरूआती दिनों में बछड़े का खान पान	सोनू एवं स्नेह लता चौहान	38
17.	भेड़ बकरियों के चयन की विधि तथा विभिन्न अवस्थाओं हेतु आहार बनाना	सोनू एवं स्नेह लता चौहान	41
18.	पशु आहार संयंत्र के विभिन्न भाग एवं संयंत्र का प्रचलन व रख रखाव	सोनू एवं स्नेह लता चौहान	44
19.	पशुओं में थनैला रोग की रोकथाम के विभिन्न उपाय	राजेन्द्र यादव, विनय कुमार एवं पंकज कुमार	47

परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों का मशीनीकृत उत्पादनः अवसर और चुनौतियां

योगेन्द्र सिंह यादव, सोमवीर एवं सुरेश कुमार
डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय,
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत विश्व में सर्वाधिक दूध उत्पादन करने वाला देश है जिसका वर्ष 2016–17 में औसत वार्षिक उत्पादन 155.5 मिलीयन टन है। भारत में दूध उत्पादन 6.23 प्रतिशत की वृद्धि दर से बढ़ रहा है, जो विश्व की दूध उत्पादन दर (3.1प्रतिशत) से दोगुना है। भारत में दूध की प्रति दिन व्यक्ति उपलब्धता 337 ग्राम है, जबकि विश्व की प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपलब्धता 229 ग्राम है।

भारत में कुल दूध उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा पांरपरिक दुग्ध उत्पादों में परिवर्तित होता है बाकी दूध सीधे तौर पर पी लिया जाता है। पारम्परिक दूध उत्पाद जो मुख्य रूप से गैर संगठित क्षेत्र में ग्रामीण पैमाने तक सीमित है

भारत में दूध का इस्तेमाल

दूध/दूध उत्पाद	उपयोग (प्रतिशत में)
तरल पदार्थ	47
दूध पाउडर	3.8
घी	28
मक्खन	6.5
खोआ/मावा	5.5
मलाई/क्रीम	0.5
दही	7
आईसक्रीम	0.2
अन्य	3

हमारे देश में डेयरी उद्योग के तेजी से विकास के साथ इसके प्रक्रिया, उपकरणों की तकनीक और परिकल्पना में भी आवश्यक बदलाव किए गए हैं और पारम्परिक उत्पाद बनाने के लिए उपकरणों का कोई अपवाद नहीं है। औद्योगिक उत्पादन के लिए पारम्परिक उत्पादों की तैयारी के लिए लघु–स्तरीय तकनीक का इस्तेमाल औद्योगिक उत्पादन के लिए एक मुश्किल कार्य है।

परंपरागत भारतीय दूध उत्पाद वे सारे दूध उत्पाद है जो भारत के इतिहास के साथ अटूट बंधन में जुडे है, एवं जिनका विकास स्थानीय ईंधन तथा स्थानीय पकाने के तरीके से हुआ है। ये दूध उत्पाद पोषण मात्रा को लंबे समय तक बचाकर रखने के उद्देश्य से भी बनाए जाते है। इन उत्पादों के नाम क्षेत्र के अनुसार बदलते रहते है तथा इनकी प्रकृति को बेहतर समझने के लिए इनको निम्नलिखित पांच प्रमुख श्रेणियो में वर्गीकृत किया गया है।

पूर्ण या आंशिक संघनित निर्जलीकृत उत्पादः वह दूध उत्पाद जिनमें ताप एवं ऊर्जा का प्रयोग करके दूध को संघन बनाया जाता है एवं नमी की मात्रा को कम किया जाता है, उदाहरणः खोआ, रबडी, बासुंदी आदि।

ताप व अम्ल द्वारा जमे हुए उत्पादः गाढ़े/जमे हुए दूध उत्पादों के उत्पादन के लिए, ताप व अम्ल का प्रयोग किया जाता है । उत्पाद की बनावट, संरचना पानी की मात्रा पर निर्भर करती है। उदाहरणः पनीर, छेन्ना आदि।

किण्वित दूध उत्पादः निर्धारित तापमान तथा निर्धारित समय के लिए दूध में लैक्टिक एसिड कल्चर डाला जाता है ताकि दूध का किण्वन हो सके। उदाहरणः दही, चक्का आदि।

वसा युक्त उत्पादः वह दूध उत्पाद जिन में वसा की मात्रा बहुत अधिक होती है उदाहरण : घी, मक्खन, मलाई आदि।

अनाज आधारित दूध उत्पाद : वह दूध उत्पाद जिनके उत्पादन, स्वाद, बनावट आदि में अनाज का महत्वपूर्ण

योगदान रहता है। उदाहरणः खीर (उतर भारत में), पायसम (दक्षिण भारत में) आदि।

परंपरागत डेयरी उत्पादों के निर्माण के लिए वर्तमान पद्धति उन तकनीकों पर आधारित होती है जो अधिक समय तक बनी रहती हैं। विश्व में हमारी उपस्थिति को बढ़ाने के लिए रणनीति में से एक है गुणवत्तायुक्त डेयरी उत्पादों के अनुसंधान एवं विकास को प्रोत्साहित करना, इसके अलावा पारंपरिक तकनीकों से पारंपरिक डेयरी उत्पादों को बेहतर बनाने, उपकरण तैयार करने और मूल्य वर्दि्धत डेयरी उत्पादों के निर्माण के लिए मशीनीकरण शामिल है। भारत को भी नवीन डेयरी उत्पादों को विकसित करने और पारंपरिक डेयरी उत्पादों के निर्माण का आधुनिकीकरण करने की आवश्यकता है। भारत ने शताब्दियों से लेकर विभिन्न स्वदेशी तकनीकों का विकास किया है, ताकि मूल्य वर्धित उत्पादों के रूप में दूध को सुरक्षित किया जा सके।

मूल्यवर्धित दुग्ध उत्पादों के बड़े पैमाने पर उत्पादन और उच्च गुणों के साथ उत्पाद के निर्माण के लिए उपकरणों के परिकल्पना में नवीनीकरण के प्रयास जरूरी है। जैसेः राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, आनंद (गुजरात) में खोआ को केसर पेड़ा में परिवर्तित करने की औद्यौगिक मशीनीकृत विधि विकसित की है। बासुंदी के लिए मानक प्रक्रिया और निरन्तर प्रक्रिया का उपयोग करते हुए बासुंदी के उच्च तकनीकी उत्पादन की विधि पारंपरिक पद्धति से कई लाभ प्रदान करती है।

पारम्परिक भारतीय डेयरी उत्पादों के मशीनीकृत उत्पादन की वर्तमान स्थिति

परंपरागत दूध उत्पादों की एक किस्म भारत में निर्मित होती है जिनमें से ज्यादातर विशेष क्षेत्र पर आधारित है। पारंपरिक दूध उत्पादों के निर्माण अनिवार्य रूप से अपने उत्पादन की बुनियादी प्रक्रिया के भीतर छोटे स्तर पर किया गया है जिसमे बहुत सी विविधता मौजूद है जो इन उत्पादों को उनके स्पर्श, स्वाद, महक आदि के द्वारा विशिष्ट पहचान दिलाता हैं। अब, औद्योगिक पैमाने पर इन उत्पादों के मशीनीकृत उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी का मानकीकरण किया जा रहा है।

खोआ : परंपरागत दूध उत्पादों की नीव

खोआ एक सघन संपूर्ण दूध उत्पाद है जिसकी उत्पादन प्रक्रिया में दूध का संघणन वातावरणीय/पर्यावरणीय दबाव पर किया जाता है। भारत में खोआ गैर–संगठित क्षेत्र में पारंपरिक तरीके से बनाया जाता है तथा संगठित क्षेत्र में खोआ का उत्पादन व्यवसायिक तरीके से किया जाता है। आम तौर पर तीन मुख्य प्रकार के खौआ पिंडी, ढाप और दानेदार को मान्यता दी जाती है जो मुख्य रूप से बनावट और स्वरूप विशेषताओं में भिन्न होती है और विशिष्ट प्रकार के मिठाइयों के लिए आवश्यक होते हैं।खोआ किस्मों के आधार पर विभिन्न दूध उत्पाद बनाए जाते है, जैसे बर्फी, पेड़ा पिंडी किस्म से, गुलाब जामुन धाप किस्म से तथा कलाकंद, मिल्क केक, खोआ की दानेदार किस्म से बना, जाते है।

पनीर : परंपरागत दूध उत्पादों का महत्वपूर्ण अंग

पनीर एक ताप और अम्ल (एसिड) स्कन्दित्त दूध उत्पाद है जिसके उत्पादन के लिए अम्ल/स्कंदक का स्कंदन (एक निर्धारित तापमान) माननीकृत दूध में किया जाता है। कुछ साहित्य एवं शोध के आधार पर यह पता चला है कि भारत में कुल दूध उत्पादन का पांच प्रतिशत पनीर उत्पादन में इस्तेमाल होता है एवं पनीर उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर तेरह प्रतिशत है। ग्रामीण तथा गैर–संगठित क्षेत्र में पनीर उत्पादन के लिए पांरपरिक तरीके का सहारा लिया जाता है परन्तु पनीर उत्पादन में व्यवसायीकरण के कारण पनीर की उत्पादन, मात्रा एवं गुणवत्ता में बढ़ोतरी हुई है। पनीर की प्राप्ति दूध के प्रकार, दूध की गुणवत्ता, स्कंदक के प्रकार, मात्रा, तापमान, दूध की उष्म प्रक्रिया, स्कंदन का तापमान एवं अम्लीयता पर निर्भर करती है।

छेन्ना : बंगाली मिठाइयों की आधारशिला

छेन्ना एक अम्ल स्कंदन दूध उत्पाद है जिसकी उत्पादन प्रक्रिया पनीर के समांतर/समान है। यह दूध उत्पाद मुख्यतः गाय के दूध से ही बनाया जाता है क्योंकि गाय के दूध के अन्दर कैल्शियम एवं दूध प्रोटीन की मात्रा

भैंस के दूध के मुकाबले कम होती है जो छेन्ना को नर्म तथा खंखरी बनावट प्रदान करता है। पनीर के विपरीत, छेन्ना का सीधे तौर पर उपभोग नही होता परन्ते इसका उपयोग करके विभिन्न बंगाली मिठाईंया बनाई जाती है। जैसे रसगुल्ला, सन्देश।

दही: पारम्परिक धरोहर

दही हर घर में उपयोग होने वाला अर्ध तरल दूध उत्पाद है जिसकी उत्पादन प्रक्रिया में हानिरहित लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया का संरोपण गर्म दूध में किया जाता है। यह जीवाणु दुग्ध में उपस्थित लैक्टोस को लैक्टिक एसिड, एसिटिक एसिड तथा कार्बन डाईआक्साईड में तब्दील कर देते है एवं कुछ जीवाणु दूध के सिट्रिक एसिड से डायऐसीटयाल बनाते है, जिसके फलस्वरूप दही में स्वाद आता है। दही या किण्वित दुग्ध उत्पादों का वैदिक काल से भारत के साथ अटूट और मजबूत नाता है। वैदों में भी इन दुग्ध उत्पादों का उल्लेख किया गया है। जैसे प्रसादजया, श्रक्रिणी, रसाला आदि। भारत में दही उत्पादन घरेलू स्तर पर ही होता था परन्तु इस आधुनिकीकरण के दौर में दही के उत्पादन प्रक्रिया का भी औद्योगिकरण हो गया है।

अवसर

भारत पारंपरिक डेयरी प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नये विचारों, मशीनीकृत उत्पादन, पैकेजिंग, भंडारण आदि के लिए तेजी से विस्तार करने के लिए तैयार है। परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों की प्रमुख ताकत इसके उत्पादों में उपलब्ध व्यापक विविधता है। इसमें उत्पादन लाभ भी बहुत अधिक है, जो मुख्यतः कच्चे माल की लागत कम होने के कारण है। ये उत्पाद संगठित क्षेत्र के लिए बेहतर वित्तीय स्थिरता और वृद्धि के लिए सहायक साबित हो सकते हैं। इस समय भारत के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विकास के लिए अवसर उपलब्ध है जो परंपरागत दूध उत्पादों के मशीनीकरण के लिए नए आयाम स्थापित करने में मददगार होगें।

चुनौतियाँ

परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों के निर्माण में मशीनीकरण करने के लिए किए गए कई अभिनव प्रयासों के बावजूद, उद्योगों द्वारा इन नवीन तकनीकों का उपयोग बहुत सीमित है। विभिन्न पारंपरिक दूध उत्पादों के लिए नए उपकरणों का विकास भारी खर्च और अधिक क्षमता विकसित करना एक जोखिम भरा कार्य है। इसके अलावा, भारत में वाणिज्यिक उपकरण निर्माता नए उपकरणों के विकास में निवेश करने के लिए अनिच्छुक हैं। इस श्रृंखला में उत्पादन के साथ साथ इन पारंपरिक दूध उत्पादों की पैकेजिंग भी महत्वपूर्ण है, जो उपयुक्त और पर्यावरण अनुकूल होना जरुरी है। स्वच्छ व उचित पैकेजिंग, गुणवत्ता नियंत्रण, भंडारण, कुशल प्रशिक्षण इन दूध उत्पादों के लिए प्रमुख चुनौती है। परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों एक और चुनौती इन उत्पादों की निरंतर गुणवत्ता बनाये रखना है जो इनकी कानूनी मानकों और गुणवत्ता मूल्यांकन प्रणाली को कायम रखने के लिए आवश्यक है।

परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों को इनके नए रूप में स्वास्थ्य लाभ को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, जिसके लिए इनके बिक्री एवं विपणन में नए आयाम स्थापित करने की जरुरत है। बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए भावी उद्धमियों में विश्वास बनाना एवं उनके आत्मविश्वास को बढ़ानेके लिए बाजार की सही जानकारी उपलब्ध कराना भी आवश्यक है ।

दूध के मूल्य में वृद्धि एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसे डेयरी इंजनियरों, वैज्ञानिकों, और टेक्नीशियनो द्वारा गौर किया जाना चाहिए। इसलिए मूल्यवर्धित डेयरी उत्पादों के निर्माण के लिए उपकरणों की परिकल्पना में नवीनता की आवश्यकता है। पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पाद के निर्माण के पारंपरिक तरीकों से कुछ नुकसान जैसे अप्रभावी ऊर्जा, स्वच्छता, उत्पाद की निम्न गुणवत्ता आदि का सामना करना पड़ रहा है। इन निहित नुकसान को दूर करने के प्रयास स्वरुप इन निर्माण प्रक्रियाओं का मशीनीकरण करना आवश्यक हो गया है जिससे इनके और विकसित करने एवं बड़े व्यवसायिक पैमाने पर उत्पादन किये जाने की पुरजोर आवश्यकता है।

निष्कर्ष

पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों में उच्च निर्यात

क्षमता के साथ अधिक लाभ लेने की अपार संभावनाएं मौजूद है इसके लिए इस क्षेत्र को आधुनिकीकरण के साथ साथ मशीनीकरण एवं वाणिज्यिक उत्पादन क्षमता के साथ उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने की तत्काल आवश्यकता है। इन के निर्माण के लिए नए उपकरण एवं उत्पादन दक्षता बढ़ाने की जरुरत है वैकल्पिक स्रोतों के उपयोग की संभावनाओं को भी ध्यान में रखते हुए रोजगार और उत्पाद सुधारने के असीम अवसर भी मौजूद हैं। इस क्षेत्र के समस्त विकास के लिए उद्योग, असंगठित क्षेत्र, उपकरण निर्माता और अनुसंधान एवं विकास संस्थानों में आपसी सहयोग एवं समन्वय स्थापित करना महत्वपूर्ण है ।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

डेयरी प्रौद्योगिकी में अवसर

विपुल जागलान, संदीप दुहन एवं योगेंद्र सिंह यादव

डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, हिसार

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज भी यहां की अधिकांश आबादी खेती–बाड़ी पर आश्रित है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि जनित उत्पादों का अहम योगदान है। पशुपालन के बिना समाज की खाद्य आवश्यकता पूरा करना संभव नहीं है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था होने की वजह से डेयरी उद्योग की भूमिका काफी अहम है। पिछले तीन दशकों से भारत दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में नया कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। किसानों की आय वृद्धि के साथ–साथ उपभोक्ता की स्वास्थ्य वृद्धि में डेयरी उद्योग का विशेष योगदान है। हरियाणा प्रांत को विशेष तौर पर दूध दही के खान पान से जाना जाता है। भारत विश्व दुग्ध उत्पादन में 19 प्रतिशत सहयोग कर रहा है, जो 2020 तक बढ़कर 30–35 प्रतिशत के करीब हो जाएगा। डेयरी उद्योग में संगठित उद्योग की हिस्सेदारी बढ़ रही है। रेबो बैंक की रिपोर्ट की मानें तो वर्तमान समय में डेयरी इंडस्ट्री 13–15 प्रतिशत सालाना वृद्धि कर रही है। आने वाले 4–5 वर्षों में वैल्यू एडेड प्रोडक्ट्स की संख्या बढ़ेगी। इस समय यह बाजार 10 बिलियन डॉलर के करीब है। वर्ष 1946 में गुजरात में अमूल की स्थापना से व्यवस्थित डेयरी उद्योग के विकास को दिशा मिली और इस विषय में शिक्षण व प्रशिक्षण को भी बढ़ावा मिला। भारत में लगभग 400 से अधिक डेयरी प्लांट्स हैं, जो विभिन्न तरह के डेयरी प्रोडक्ट्स का उत्पादन करते हैं। डेयरी प्रोसेसिंग इंडस्ट्री के रफ्तार पकड़ने से डेयरी इक्विपमेंट इंडस्ट्री का भी तेजी से विकास हो रहा है। इस समय तकरीबन 170 से अधिक डेयरी इक्विपमेंट कंपनियां देश में हैं। इस तरह के प्लांट को सफलतापूर्वक चलाने के लिए, ट्रेंड प्रोफेशनल की मांग दिन–प्रतिदिन बढ रही है। डेयरी उत्पादों की मांगों को देखते हुए, यह उद्योग भी विशालकाय है और इससे विदेशी मुद्रा भी आती है।

डेयरी टेक्नोलॉजी से जुडे प्रोफेशनल का काम दूध उत्पादन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, भंडारण, विपणन, वितरण आदि से जुडा होता है। आज जिस रफ्तार से दूध उत्पादन के क्षेत्र में भारत तरक्की कर रहा है, उससे ऐसे लोगों की मांग लगातार बढ़ रही है, जो डेयरी टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में प्रशिक्षित हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के मद्देनजर डेयरी इंडस्ट्री एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन कर उभरी है, क्योंकि यहां पर प्रत्येक व्यक्ति दुग्ध एवं अन्य डेयरी उत्पादों पर निर्भर है। इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि कई बड़ी कंपनियां इस फील्ड में कदम रख चुकी हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां जैसे नेस्ले इंडिया लिमिटेड, जीएसके, आइटीसी, हिंदुस्तान यूनिलीवर (एचयूएल), हेंज, वॉकहार्ट, मदर डेयरी, रिलायंस, अमूल, पतंजलि आदि. भी देश में तेजी से आ रही हैं। इसके चलते अवसर भी खूब मिल रहे हैं तथा दूध के उत्पादन, उसकी प्रसंस्करण तथा गुणवत्ता नियंत्रण आदि विधियों में बदलाव देखने को मिल रहा है। इन उत्पादों को बड़े पैमाने पर विदेशों में निर्यात से विदेशी मुद्रा भारत आ रही है। भारत सहित कई देशों में डेयरी प्रौद्योगिकी से संबंधित पेशेवरों की मांग बढ़ती जा रही है।

डेयरी के कामों के अंतर्गत कई प्रकार के दुग्ध उत्पादों का निर्माण, उपार्जन, भंडारण, प्रसंस्करण व विपणन शामिल हैं। इस काम के लिए डेयरी वैज्ञानिकों को नियुक्त किया जाता है, जो निर्माण की प्रक्रिया के हर पक्ष पर नजर रखते हैं। डेयरी तकनीशियन प्रयोग करके आकलन करते हैं कि विभिन्न तरह के चारे और पर्यावरण से जुड़ी स्थितियां दूध की गुणवत्ता, पौष्टिकता व मात्रा पर क्या प्रभाव डालती हैं। इसलिए, डेयरी विशेषज्ञों की मांग उसी तरह बढ रही है जिस तरह से दूध उत्पादों की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। इन विशेषज्ञों के कामों पर नजर डालें तो दूध के विपणन या दूध को अन्य डेयरी प्रोडक्ट्स में तब्दील करने का काम भी शामिल है। डेयरी टेक्नोलॉजी मूल रूप से तकनीक व गुणवत्ता नियंत्रण पर ध्यान देती है। इस क्षेत्र में काम करने वाले दूसरे पेशेवरों में डेयरी अभियांत्रिकी की आवश्यकता होती है, इन पर डेयरी संयंत्र के व्यवस्थापन व रख–रखाव की जिम्मेदारी होती है। इसके अलावा मार्केटिंग पेशेवरों की भी यहां जरूरत होती है जो मिल्क प्रोडक्ट्स की मार्केटिंग व सेल्स से जुड़े काम देखते हैं। अगर आप इन कामों में रुचि रखते हैं तो यह क्षेत्र आपके लिए एक सुनहरा भविष्य प्रदान कर सकता है।

डेयरी टेक्नोलॉजी के कोर्स विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा कराए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर व डॉक्टरेट स्तर के कोर्स चलाए जा रहे हैं। ज्यादातर संस्थानों में स्नातक स्तर के कोर्स में प्रवेश के लिए अखिल भारतीय स्तर पर लिखित प्रवेश परीक्षा आयोजित की जाती है। ग्रेजुएशन करने के बाद मास्टर डिग्री प्रोग्राम में एडमिशन लेने का रास्ता भी खुल जाता है। यहां स्टूडेंट्स डेयरी प्रौद्योगिकी, डेयरी अभियांत्रिकी, डेयरी सूक्ष्म जीव विज्ञान, डेयरी रसायन विज्ञान, डेयरी अर्थशास्त्र, और इससे जुडे अन्य क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकते हैं।

डेयरी टेक्नोलॉजी एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है जो प्रशिक्षित पेशेवरों के लिए कई विकल्प उपलब्ध कराता है। डेयरी टेक्नोलॉजी में करियर बनाने के इच्छुक लोगों की विज्ञान में रुचि आवश्यक है। यह ऐसा काम है, जिसमें सेवा व समर्पण दोनों की आवश्यकता होती है। चाहे कोई भी विभाग हो, उसमें धैर्यपूर्वक अपने काम को अंजाम देना होता है। जरा–सी लापरवाही यूनिट को बड़े पैमाने पर नुकसान पहुंचा सकती है।

यह ऐसा क्षेत्र है जहां आप चाहें तो स्वरोजगार से अच्छी कमाई कर सकते हैं। यहां सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों में रोजगार की गुंजाइश है। प्रशिक्षित पेशेवरों को डेयरी फार्म, कोऑपरेटिव सोसायटी, ग्रामीण बैंकों, दूध उत्पाद प्रसंस्करण व निर्माण इकाई में डेयरी टेक्नोलॉजिस्ट, सुपरवाइजर, कंसल्टेंट, डेयरी अभियंता, डेयरी वैज्ञानिक, शोधकर्ता, अध्यापन एवं संयंत्र प्रबंधक के तौर पर कार्य के मौके मिलते हैं। गुणवत्ता नियंत्रण के अंतर्गत आने वाले विभाग भी इन लोगों की नियुक्ति करते हैं। कोर्स के दौरान छात्रों को दूध उत्पादन, डेयरी उपकरण और उनकी उपयोगिता, दूध प्रसंस्करण और पैकेजिंग, दुग्ध उत्पाद, बीमा, डेयरी प्रबंधन तथा विपणन से जुड़ी अन्य जानकारी प्रदान की जाती है। आजकल डेयरी क्षेत्र में तकनीकी जानकारियों को भी जरूरी माना जाता है। इसके चलते कोर्स की महत्ता बढ़ी है। डेयरी तकनीक में दक्ष व्यक्ति चाहें तो अपना मिल्क प्लांट, क्रीमरी, आइसक्रीम यूनिट भी शुरू कर सकते हैं। हालांकि एक सलाहकार के रूप में काम करने से पहले काफी अनुभव हासिल करना जरूरी है। इसके अलावा शिक्षण एवं अनुसंधान में भी अवसर हैं।

प्रमुख भारतीय कंपनियां हर वर्ष सैकड़ों लोगों को रोजगार देती हैं। देश में डेयरी संस्थान, डेयरी संघ, सहकारी ग्रामीण बैंक, दूध उत्पाद प्रसंस्करण और निर्माण उद्योग, ग्रामीण विकास मंत्रालय से जुड़े विभाग, कृषि विभाग व खाद्य प्रसंस्करण उद्योग आदि में हर वर्ष इससे संबंधित पेशेवरों की मांग होती है। अधिकांश संख्या में डेयरी टेक्नोलॉजिस्ट स्वरोजगार के रूप में अपना व्यवसाय

जैसे क्रीमरी, आइसक्रीम यूनिट आदि शुरू करने के अलावा प्रशिक्षक के रूप में करियर बना सकते हैं।

भारत में डेयरी के क्षेत्र में विस्तार को देखते हुए संबंधित विशेषज्ञों की अधिक मांग है। खाडी देशों में पेशेवरों की भारी मांग देखने को मिल रही है। यदि छात्र ने गंभीरतापूर्वक कोर्स किया है तो इस सेक्टर में उसे रोजगार के लिए निराश होकर नहीं बैठना पड़ेगा। कोर्स के बाद अधिकांश नौकरियां डेयरी संयंत्र में ही मिलती हैं। अनेक संस्थान एवं महाविद्यालय डेयरी टेक्नोलॉजी से संबंधित कोर्स करा रहे हैं।

- राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल।
- डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।
- सेठ एम.सी. डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, आनंद।
- डेयरी विज्ञान महाविद्यालय, कर्नाटक पशु चिकित्सा, पशु और मत्स्य विज्ञान विश्वविद्यालय, बेंगलुरु।
- डेयरी प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर।
- संजय गांधी डेयरी विज्ञान संस्थान, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना।
- इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. **पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम**
2. **पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)**
3. **निःशुल्क SMS सेवा**
4. **पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री**
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पारपंरिक भारतीय डेयरी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए परिवर्तनात्मक रणनीति

विपुल जागलान, संदीप दुहन एवं वकील नागर

डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, हिसार

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत 2015–16 में 156 मिलियन टन प्रति वर्ष उत्पादन के साथ दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक है। उपभोक्ता की आय में वृद्धि और उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता के कारण डेयरी उत्पादों और दूध की मांग बढ़ती जा रही है। ग्रामीण स्तर पर अधिकांश दूध का सेवन प्रसंस्करण के बिना किया जाता है। दूध और डेयरी उत्पादों पर प्रति व्यक्ति मासिक व्यय का खर्च 1971 से 2011 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में 3 से 116 और शहरी इलाकों में 5 से 187 तक बढ़ गया है। शीत श्रृंखला की बुनियादी सुविधाओं और स्वच्छ प्रथाओं की कमी के कारण ग्रामीण इलाकों में दूध खराब हो जाता है, जो दूध की उच्च गुणवत्ता वाले डेयरी उत्पादों में प्रसंस्करण में बाधा डालता है। डेयरी अभियांत्रिकी एक ऐसा क्षेत्र है जो दूध और दूध उत्पादों के प्रसंस्करण में गुणवत्ता के बुनियादी ढांचे के विकास के संबंध में समाधान प्रदान करता है ताकि यह उच्चतम सुरक्षा स्तर पर उपभोक्ता तक पहुंच सके। मूल्यवान डेयरी उत्पादों के निर्माण के लिए नवीन तकनीकों का संवर्धन, उपकरण की बनावट और मशीनीकरण के लिए उत्पादों को और अधिक किफायती, सुविधाजनक और प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए अनुसंधान और विकास में बड़े निवेश की आवश्यकता है।

हमारे देश में डेयरी उद्योग ऊर्जा के अप्रभावी उपयोग, स्वच्छता और उत्पाद की गुणवत्ता में कमी से संबंधित चुनौतियों का सामना करते हैं। डेयरी अभियांत्रिकी ने उत्पादन उपकरण विकसित करने में मदद की है जो उत्पादन और उन्नत अभियांत्रिकी सिद्धांतों पर आधारित है। भारत में पारंपरिक डेयरी उत्पादों का निर्माण कुटीर उद्यम द्वारा किया जाता है। खेप, अर्द्ध–निरंतर, निरंतर उपकरण विकसित करने से, कुटीर पैमाने के उत्पादन के निहित नुकसान को दूर कर सकता है। निरंतर खोया बनाने की मशीन जैसी कई मशीनें विकसित की गई हैं। खोया आधारित मिठाइयों का मशीनीकरण भी किया जा रहा है। गाजर हलवा, केसर पेड़ा, खीर, बसुंडी, कुल्फी, और सतत घी बनाने की मशीन एन.डी.डी.बी., एन.डी.आर.आई.ए.ए.यू. जैसे संगठनों द्वारा विकसित की गई है।

स्वदेशी डेयरी उत्पादों के निर्माण के मशीनीकरण में किए गए कई अभिनव प्रयासों के बावजूद, उद्योग द्वारा इन नई खोज को अपनाना बहुत सीमित है। विभिन्न पारंपरिक दूध उत्पादों के लिए नए उपकरणों का विकास करना भारी व्यय वाला और एक समय लेने वाला अभ्यास है। इसके अलावा, भारत में वाणिज्यिक उपकरण निर्माता नए

उपकरणों के विकास में निवेश करने के लिए अनिच्छुक हैं। पारंपरिक डेयरी उत्पादों की पैकेजिंग का सुदृढ़ होना एक और प्रमुख क्षेत्र है। स्वच्छ पैकेजिंग, गुणवत्ता नियंत्रण और भंडारण में कुशल प्रचालक के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों का मानकीकरण एक और चुनौती हैं। पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों के लिए कानूनी मानकों और गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली का अभाव प्रमुख चुनौती है।

परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों के नए रूपों को स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले उत्पादों के रूप में विकसित किया जा सकता है जैसे कि कोलेस्ट्रॉल को कम करने वाले उत्पाद, जामुन और चेरी से बना उत्पाद जो कि एंथोसायनिन से कैंसर आदि को रोकती है। पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों के विपणन में भी नवीनीकरण आवश्यक है । फास्ट फूड श्रृंखला या कुछ लोकप्रिय ब्रांडों के मताधिकार के माध्यम से स्वदेशी डेयरी उत्पादों को लोकप्रिय बनाना संभव है। पारंपरिक डेयरी उत्पादों के व्यावसायिक उत्पादन के लिए भावी व्यावसायियों के बीच भारत और विदेशों में बाजार की खुफिया जानकारी एकत्र करना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष

पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों में उच्च लाभ और उच्च निर्यात क्षमता है। उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक उत्पादन के लिए नवीनीकरण, मशीनीकरण और स्वचालन के साथ इस क्षेत्र को आधुनिक बनाने की तत्काल आवश्यकता है। विभिन्न पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों के निर्माण के लिए हमें ऊर्जा में कुशल नए उपकरण विकसित करने की आवश्यकता है। जहां भी संभव हो, पारंपरिक डेयरी उत्पादों के निर्माण में ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों के उपयोग की संभावनाओं का फायदा उठाया जाना चाहिए। नई संरक्षण तकनीकों को पारंपरिक डेयरी उत्पादों के अचल जीवन को बेहतर बनाने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। उद्योग और अनुसंधान एवं विकास संगठनों को मजबूत बनाने की भी जरूरत है। इस क्षेत्र के समस्त विकास के लिए उद्योग, असंगठित क्षेत्र, उपकरण निर्माता और अनुसंधान एवं विकास संस्थानों के सहयोगी प्रयासों की आवश्यकता है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

पशुओं में अल्ट्रासाउंड का महत्त्व

रविदत्त, ज्ञानसिंह एवं विनय यादव

पशु मादा एवं प्रसूति रोग विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय हिसार।

अल्ट्रासाउंड तकनीक का रोग निदान और चिकित्सीय उपकरण के रूप में पशु प्रजनन के क्षेत्र में तेजी से विकास हो रहा है। सस्ती और सरल तकनीक होने के कारण विश्वभर में अल्ट्रासाउंड तकनीक प्रसिद्ध होती जा रही है। इस तकनीक की भारत के लगभग सभी पशु चिकित्सा संस्थानों में उपलब्धता है। इसके साथ ही अनुसंधान के लिए नए क्षेत्रों को खोलने से किसान भाईयों को पशुधन में लाभ मिलने के और आसार बढ़ गये हैं। निर्देशित हस्तक्षेप तकनीक नैदानिक या चिकित्सीय उद्देश्यों के साथ–साथ प्रजनन–जैव प्रौद्योगिकी के लिए भी इस्तेमाल की जा रही है। जब हम एक अल्ट्रासाउंड करते हैं तो हम पशु की आंतरिक छवियों को देख सकते हैं। गुदाभेदी ट्रांस–रेक्टल (या पेट के ऊपर से) ट्रांसक्यूटेनीयस (अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग) एक आसान एवं सरल तकनीक है जिसमें पशु को बेहोश करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती तथा पशु के लिये सहनीय और गैर–नुकशानदेय विधि है। एक्स–रे की तुलना में अल्ट्रासाउंड को नैदानिक उपकरण के तौर पर ऑपरेटर और पशु दोनों के लिये बहुत ही सुरक्षित माना जाता है। छोटी अर्थात पोर्टेबल अल्ट्रासाउंड मशीन को डेरी फार्म या पशु बाड़े में ले जाकर पशु की जांच कर सकते हैं। इन पोर्टेबल अल्ट्रासाउंड मशीनों को एक दिन पहले कुछ घंटों के लिये बिजली से चार्ज कर लिया जाता है अन्यथा बाड़े में बिजली की आवश्यकता पड़ती है।

उपकरण के प्रकार एवं सिद्धांत

पशु चिकित्सा प्रजनन में आमतौर पर गुदाभेदी ट्रांसडयूसर इस्तेमाल किया जाता है। गुदाभेदी ट्रान्सडयूसरों के लिए 5.10 मेगाहर्ट्ज की आवृत्ति और पेट के ऊपर ट्रांसक्यूटेनीयस से बच्चेदानी से सम्बन्धित जांच के लिये 1.4^{0}0 मेगाहर्ट्ज की आवृत्तियों के ट्रांसडयूसर इस्तेमाल किये जाते हैं। प्रजनन एवं गर्भावस्था सम्बन्धित जांच के लिए गाय, भैंस, घोड़ी, ऊंटनी, भेड़ और बकरी में गुदाभेदी ट्रान्सडयूसरों का उपयोग किया जाता है। प्रजनन पशुओं में भ्रूण के स्वास्थ्य और गर्भधारण की निगरानी करने के लिए यह भी उपयोगी है। बड़े पशुओं में लगभग साढ़े 5 महीने तथा छोटे पशुओं में 1 महीने के बाद गर्भ की जांच पेट के ऊपर ट्रांसक्यूटेनीयस से भी की जा सकती है। गुदाभेदी ट्रान्सडयूसर से बडे पशुओं में 30 दिन के बाद पशु गर्भ से है या नहीं का पता लगाया जा सकता है। अल्ट्रासाउंड मार्किट में एकल ए या दोहरी ए या एकाधिक आवृत्ति वाले ट्रांसडयूसर विविध रूप में उपलब्ध हैं। ट्रांसडयूसर में पीजोइलेक्ट्रिक क्रिस्टल होते हैं जो की विद्युत प्रवाह पर उच्च आवर्तीकी तरंग उत्सर्जर करते हैं ये तरंग लक्षिये आंतरिक अंग से टकराने के तदोपरांत ट्रांसडयूसर के द्वारा वापिस प्राप्त की जाती हैं जो अल्ट्रासाउंड मशीन की चित्रपट पर प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करता है। तस्वीर में हड्डी जैसे ठोस उत्तक सफेद और सौम्य उत्तक स्लेटी और चितकबरे दिखाई देते हैं। ग्रे जैसे एमनियोटिक द्रव्य तरल पदार्थ ए जिसमें बच्चा रहता है। तरंगों के प्रति कोई प्रतिध्वनि नहीं करता इसलिए तस्वीर में काला दिखाई देता है।

प्रजनन सम्बन्धित जांच में अल्ट्रासाउंड के उपयोग

अल्ट्रासोनोग्राफी से प्राप्त छवियों की व्याख्या के लिए अल्ट्रासोनोग्राफर को पशु की शारीरिक रचना तथा अंगों के शारीरिक स्थान का बुनियादी ज्ञान का होना अति आवश्यक है। एक सजातीय सरंचना के प्रतिबिम्ब में बदलाव या परिवर्तन एक रोग का संकेत हो सकता है।

1. गर्भजांच : गाय एवं भैंस में गुदाभेदी अल्ट्रासोनोग्राफी से लगभग 30 दिन में गर्भ की जांच की जा सकती है इसके

साथ ही भ्रूण के दिल की धड़कन का पता चल जाता है। लगभग साढ़े 5 महीनों में पेट के ऊपर से ट्रांसक्यूटेनीयस गर्भ का पता लगाया जा सकता है। गुदाभेदी अल्ट्रासोनोग्राफी से भ्रूण की थैली का लगभग 18 दिन के गर्भ काल में पता चल जाता है। इसलिये पेट के ऊपर की बजाय गुदाभेदी अल्ट्रासोनोग्राफी ज्यादा फायदेमंद है। कुतिया, भेड़ और बकरी में भी एक महीने से पहले गाभिन होना या न होने का पता लग सकता है। इसके साथ–साथ पशुओं में एक से ज्यादा बच्चों का गर्भ में होना, जीवित या मृत बच्चे का होना और बच्चा सामान्य रूप से विकसित हो रहा है या नहीं इत्यादि भी पता चल जाता है जो कि अन्य तकनीकों पर एक स्पष्ट लाभ है। ताज, दुम, लम्बाई, खोपड़ी के व्यास और लंबी हड्डियों की लम्बाई से गर्भावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। डॉपलर अल्ट्रासोनोग्राफी से गर्भाशय एवं नाल में रक्तप्रवाह भी मापा जा सकता है। गर्भधारण करने में असफल होने वाले पशुओं की अल्ट्रासाउंड से पहचान कर और उपचार के तदोपरांत दुबारा कृत्रिम गर्भाधान करवा देना चाहिए ताकि डेयरी फार्म की पशु प्रजनन क्षमता में सुधार हो।

चित्र 3: भैंस में 38 दिन पर अल्ट्रासाउंड से गर्भ जांच।

2. **भ्रूण लिंग निर्धारणः** अल्ट्रासोनोग्राफी से गर्भावस्था के 55–60 दिनों में नर भ्रूर्ण में जनन टूबरकल या अंडकोश की थैली के स्थान तथा मादा भ्रूर्ण में जनन टूबरकल तथा स्तन ग्रंथियों के स्थान से भ्रूण के लिंग का पता लगाया जा सकता है। अगर गाय और भैंस के गर्भ में पल रहे बच्चे के लिंग का होना मादा पाया जाए तो वर्तमान समय में उस पशु की कीमत बढ़ जाती है।

3. **अंडाशय की संरचनाओं का आकलनः** अंडाशय में विभिन्न आकार के पुटिकाओं फॉलिकल का व्यास मापकर तथा पीत–पिण्ड कोर्पसलुटियम के आकार से मद चक्र और हीट की अवस्था का पता लगाया जा सकता है। अल्ट्रासाउंड परीक्षा द्वारा अंडाशय से अंडे की रिहाई होना या देर से होने की पुष्टि भी की जा सकती हे। अमद्काल और मदाग्मन को भी अल्ट्रसाउंड से पहचान लिया जाता हें इसके अलावा गर्भाशय अंडाशय में रसौली इत्यादि का निदान भी बड़ी आसानी से किया जा सकता है।

4. **जननांग रोग निदानः** जननांग अंगों में विकास दोष, योनी की झिल्ली, परसिस्टेंटहाईमेन, (गर्भाशय में संक्रमण, गर्भाशयशोथ) गर्भाशय में सूजन (मवाद, पूटिकपुटी अर्थात् फोल्लीकुलर सिस्ट, पिण्डपुटी अर्थात लुटिएलसिस्ट तथा गर्भावस्था में अपरापोशिका) अलन्टोईस, (भ्रूणा) अम्रियोस में अत्याधिक मात्रा में तरल पदार्थ एकत्र होने की जांच इत्यादि भी अल्ट्रासोनोग्राफी से लगायी जा सकती है। पूटिकपुटी फोल्लिकुलरसिस्ट (में पुटिका का व्यास 2.5 सेंटीमीटर से ज्यादा होता है जो की 10 दिन से ज्यादा के लिये बना रहता है और पशु लगातार गर्मी) (हीट) में रहता है, जबकि पिण्डपुटी लुटिएलसिस्ट (में पिण्ड का व्यास 2.5 सेंटीमीटर से ज्यादा होता है जो की 10 दिन से ज्यादा के लिये बना रहता है और पुटी की भित्ती की मोटाई 3 मिलिमीटर से ज्यादा तथा पशु लगातार अमद्काल) अनिस्टर्रस में बना रहता है। संक्रमण एवं कैंसर इत्यादि की जांच के लिये अल्ट्रासाउंड निर्देशित बायोप्सी भी ली जा सकती है।

5. **अल्ट्रासाउंड निर्देशित हस्तक्षेपः** अल्ट्रासाउंड निर्देशित हस्तक्षेप तकनीक नैदानिकया चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। शोधजगत में अल्ट्रासाउंड निर्देशित हस्तक्षेप तकनीक मवेशियों में व्यावसायिक तौर पर पुटक आकांक्षा फोलिकुलर ऐसपीरेशन एवं भ्रूण स्थानांतरण में सुविधा के लिए इस्तेमाल की जा रही है।

पशुओं में आफरा : कारण व बचाव

सूदीप सोलंकी, संध्या मोरवाल एवं राजेश सिंघाठिया

पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र, सिरोही

पशुचिकित्सा महाविद्यालय, नवानिया, उदयपुर।

आफरा पशुओं में पाई जाने वाली एक गंभीर बीमारी है। यह मुख्य रूप से जुगाली करने वाले पशुओं जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि में होती है। जुगाली करने वाले पशुओं का पेट चार भागों (रूमन, रेटिकुलम, ओमेजम एवं एबोमेजम) में विभाजित होता है। जब पेट के रूमन भाग में किसी कारण से बहुत अधिक गैस बन जाती है, तो इसे आफरा कहते है।

आमतौर पर आफरा गीला चारा खाने से होता है। कई बार अगर किसी कारण से पशु को कब्ज हो जाएं तो भी गैस या आफरा की शिकायत होती है।

आफरा होने के निम्न कारण है–

- पशुओं को ऐसा भोजन अधिक खाने को देना जिससे कि खाने के तुरन्त बाद ही गैसें उत्पन्न हो जाएं जैसे फलीदार हरे चारे, गाजर, मूली, बंद गोभी आदि विशेषकर जब यह गले–सड़े हो।
- बरसीम, जई और दूसरे रसदार हरे चारे, विशेषकर जब यह गीले होते है तो आफरे का कारण बनते है।
- पशु को खाने के तुरन्त बाद पेट भर पानी पिलाने से।
- गेहूं, मकई आदि जिनमें स्टार्च की मात्रा अधिक होती है, इसे अधिक खा लेने से भी आफरा हो जाता है।
- चारे–दाने में अचानक परिवर्तन कर देने से।
- भोजन में कीडों या खाई हुई वस्तु से रूकावट होना।
- पशु को तपेदिक रोग होना।
- पशु को भूमि पर गिराते समय उसके शरीर का बांया भाग नीचे की ओर होना और पशु को काफी समय तक इसी अवस्था में रहने देना।
- पेट के किसी भाग में कील, तार या ऐसे ही दूसरे पदार्थ का होना जो कि पच न सकें और पेट की हरकत होने में रूकावट डालें।

लक्षण :

- आफरे के लक्षण स्पष्ट होते है। पशुओं में आफरा होने का बहुत आसानी से पता चल जाता है। पेट का आकार अधिक बढा हुआ दिखाई देता है। पेट दर्द एवं बेचैनी के कारण पशु भूमि पर पैर मारता है व बार–बार डकार लेता है। बेचैनी से देखता है और पेट पर पुंछ मारता है।
- गोबर और मूत्र थोड़ी–थोड़ी देर में बार–बार करता है। नाड़ी की गति तेज हो जाती है किन्तु तापमान सामान्य रहता है। पशु चारा–पानी बंद कर देता है और जुगाली नही करता है। दूध देने वाले पशुओं में दूध कम हो जाता है।
- पेट का गैस से अधिक फुल जाने के कारण छाती पर दबाव पड़ता है जिससे सांस लेने में तकलीफ होती है। पशु सिर आगे की ओर बढ़ा कर खडा होता है। नथुने चौडे हो जाते है और मुंह खुला रहता है। कुछ पशु पसीने से तर हो जाते है या बेचैन एवं सुस्त

दिखाई देते है।

- अधिक आफरा होने के कारण पशु की हालत गंभीर हो जाती है जो बडे पशुओं की अपेक्षा भेडों में अधिक गंभीर होती है। कभी–कभी मृत्यु हो जाती है।

उपचारः

आफरा हो जाने पर इलाज में थोडी देर करने से पशु की मृत्यु हो जाती है। इसलिए इलाज में देरी नही करनी चाहिए। सावधानी से काम लेकर निम्नलिखित तरीके से इलाज करना चाहिए–

- रोगी पशु का चारा–पानी बिल्कुल बंद कर देवें।
- उचित चिकित्सकीय सहायता शीघ्र लेनी चाहिए। यह भी ध्यान रखे कि नाल देते समय पशु की जीभ नहीं पकड़नी चाहिए। यदि दवाई पिलाने के बाद भी आराम न आए तो लगभग 12 घंटे बाद ही दवाई तेल के साथ फिर दी जा सकती है।
- आफरा बहुत ही अधिक हो तो पशु की जीभ को हाथ से पकडकर बाहर खीचें। एक रस्सा पशु के पेट पर इस प्रकार से डाले कि यह पेट के नीचे से होकर गुजरे और इसके दोनों किनारे बांयी और दांयी किल के ऊपर से गुजरे। रस्से का एक किनारा बांयी और दूसरा दायी ओर पकड़ लें पशु के बराबर खडे दोनो आदमी रस्से को अपनी–अपनी ओर खीचें और फिर ढीला छोड दें। इस क्रिया को कई बार करें। जब रस्सा कील से फिसलने लगे तो ठीक स्थान पर रख दें। ऐसा करने से रूमन से गैस निकलने लगेगी और आफरा कम होगा, लेकिन यह क्रिया बडी ही सावधानी से करनी चाहिए। यदि रस्सा खींचते समय पशु गिरने लगे तो रस्सा ढीला कर दें और पशु को गिरने से रोकें।
- पशु को ऐसे स्थान पर रखे जो साफ और समतल हो और ताजी हवा भली प्रकार आती हो।
- जहां तक संभव हो पशु को आफरे के समय बैठने ना दें एवं टहलाना चाहिए जिससे आफरे में आराम मिलता है।
- यदि आफरा बंध के कारण हो तो एनीमा करने से भी लाभ हो सकता है।

बचाव :

- पशु को चारा अथवा आहार देने से पहले ही पानी पिलाना चाहिए।
- भोजन में अचानक परिवर्तन नही करना चाहिए।
- हरा चारा एवं सूखा चारा सही अनुपात में देना चाहिए।
- चारे की मात्रा धीरे–धीरे बढानी चाहिए।
- पशु को चराने के बाद आराम करने देना चाहिए।
- घर में रखे पशु को कुछ समय घूमाना चाहिए।
- पशु को प्रतिदिन घुमाने से पेट एवं स्वास्थ्य ठीक रहता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशुओं में सर्रा रोग

नीलम, वी. के. जैन एवं जय भगवान

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

सर्रा पशुओं में पाया जाने वाला एक संक्रामक विकार है, जो पशुओं में मृत्यु तथा उत्पादन में गिरावट के कारण गंभीर आर्थिक हानि के लिए उत्तरदायी है। यह एक व्यापक रोग है जो विश्व के अनेक भागों से उल्लेखित है। कमजोरी के कारण इस रोग से ग्रासित पशु अन्य बीमारियों का शिकार जल्दी हो जाता है जैसे मुँहखुर, गलघोटू इत्यादि।

कारण:

सर्रा का प्रसारण मुख्यतः टैबेनस (डांस) वंश की मक्खियों के काटने से होता है। जो इस रोग के लिए उत्तरदायी परजीवी (ट्रिपैनोसोमा) को रक्त चूसने के समय संक्रमित पशु से स्वस्थ पशु को फैलती हैं। ये मक्खियाँ बरसात के मौसम में व बरसात के बाद के समय में अधिक सक्रिय होती है। इसलिए इसी मौसम में सर्रा पशुओं में अधिक मिलता है। यद्यपि सर्रा के अव्यक्त संक्रमण पूरे वर्ष मिलते हैं। जब पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है तब अव्यक्त संक्रमित पशु में बीमारी के लक्षण दिखाई देते हैं।

परिचय:

- यह रोग भैंस, गाय, अश्व, ऊँट एवं शूकर के साथ–साथ जंगली जानवरों में भी मिलता है। भेड़–बकरियों में भी यह रोग उल्लेखित है।
- यह रोग ऊष्णकटिबंधीय जलवायु वाले प्रदेशों में मिलता है, क्योंकि यह जलवायु टैबेनस वंश की मक्खियों के पनपने के लिए अच्छी है।

रोग के लक्षण:

- पशुओं की विभिन्न जातियों में सर्रा की प्रकृति और प्रकोप अलग–अलग होते हैं।
- गाय और भैंस में सर्रा मुख्यतः लक्षणहीन रोग है, लेकिन कुछ रोगी पशुओं में यह घातक रूप ले लेता है।
- सर्रा से प्रभावित सभी पशु रक्ताल्पता के शिकार होते हैं और उनमें मांसपेशियों की दुर्बलता देखी जा सकती है।
- रोगी पशुओं में ऐडिमा गर्दन, कोख और पैरों के निचले हिस्सों में देखा जा सकता है।
- रोगी पशुओं में रूक–रूक कर बुखार आता है।
- अधिक घातक स्थिति में प्रभावित पशु अपने बंधे हुए स्थान पर चक्कर काटने लगता है और दीवारों पर या खूंटे से सिर मारने लगता है।
- परजीवी गर्भवती मादा पशुओं में नाल के माध्यम से भ्रूण को संक्रमित कर सकता है, जिस कारण से गर्भपात हो जाता है या भ्रूण असामयिक (वक्त से पहले) पैदा हो जाता है।
- अश्व वंश के पशुओं में प्रगतिशील दुर्बलता, रक्ताल्पता और ऐडिमा के साथ–साथ गर्दन व बगलों में खाल पर पित्त निकल आते हैं।
- पशु को चलने में परेशानी होती है, कई पशु पैर घिसड़ाते हुए चलते है या चलते–चलते गिर जाते हैं।
- पशु को नेत्र–शोथ (कंजाइक्टिविटिस) हो जाता है और आँख से टपके आते हैं। कुछ पशुओं की आँख में

सफेदी आ जाती है।

- सर्रा से ग्रसित ऊँट अपने झुंड से अलग रह जाता है और लम्बी दूरी तक चलने में असमर्थ रहता है।
- चिरकालिक अवस्था में ऊँट में यह रोग लम्बी अवधि (तीन साल) तक बना रहता है और पशु की उत्पादन क्षमता को प्रभावित करता है।

चिकित्साः

- सर्रा की चिकित्सा के लिए तत्काल पशु चिकित्सक से परामर्श करें।
- पशु के तीव्र स्वास्थ्य लाभ के लिए रक्तवर्धक एंव लिवर टॉनिक देने चाहिए।
- पुनर्नवा या गंधपर्णा की पौध एंव जड़ें, गिलोय और आँवला भी सर्रा के लिए उपयोगी औषधि है।
- पशु में रक्ताल्पता को दूर करने के लिए फेरस सल्फेट (10 ग्राम) व कॉपर सल्फेट (5 ग्राम) को 500 ग्राम गुड़ में मिलाकर प्रतिदिन खिलाएं अथवा अश्वगन्धा की पत्तियों या जड़ के 20 ग्राम चूर्ण को 250 ग्राम गुड़ के साथ दिन में एक बार एक सप्ताह तक खिलाएं।

रोकथामः

- सर्रा मक्खियों द्वारा फैलता है, अतः मक्खियों की रोकथाम करके सर्रा से बचा जा सकता है। मक्खियों से बचाव के लिए बाड़े में साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए तथा धुआँ एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग मक्खियों को पशुओं एवं पशुओं के बाड़े से दूर भगाने के लिए किया जाना चाहिए। टैबेनस वंश की मक्खियाँ झाड़ियों में प्रजनन करती है, अतः झाड़ियों को काटकर इन मक्खियाँ की आबादी को नियंत्रित किया जा सकता है।
- पशुओं की कुछ नस्लें सर्रा के लिए प्रतिरोधी होती है। ऐसी नस्लों के प्रजनन को बढ़ावा देकर भी पशुओं को सर्रा से बचाया जा सकता है।
- महामारी से प्रभावित क्षेत्रों में पशुओं के खून की नियमित जाँच करनी चाहिए ताकि रोग का पता चलने पर समय रहते रोग पर काबू पाया जा सके।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पशुओं में गलघोटू रोग

नीलम, वी.के. जैन एवं रिक्की झाम्भ

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एंव पशु विज्ञान विश्वविद्यालय हिसार।

पशुपालकों को आर्थिक नुकसान पहुँचाने वाला व पशुओं के स्वास्थ्य को बहुत अधिक हानि पहुँचाने का एक महत्वपूर्ण रोग गलघोटू है। इसे धुरखा, घोटुआ, असडिया व डकहा आदि नामों से भी जाना जाता हैं, यह भैंसों में होने वाले प्रमुख रोगों में से एक है। तीव्र रोग से ग्रसित पशुओं की मृत्यु हो जाती है व इसके इलाज पर भी बहुत अधिक पैसा खर्च हो जाता है।

यह रोग बरसात के मौसम में अधिक फैलता हैं। बरसात के मौसम में यह रोग महामारी का रूप ले सकता है। कुछ प्रवर्तनपूर्व कारणों से यह बीमारी महामारी का रूप ले सकती है, जो निम्नलिखित है–

- गर्म मौसम से अचानक ठण्डे मौसम में परिवर्तन होना।
- पशुओं को उचित मात्रा में चारा व पानी दिए बिना लम्बे परिवहन पर ले जाना।
- पशुओं में कीड़ो के संक्रमण होने से एवं कुछ विषाणु जनित रोग भी पशु को गलघोटू के लिए ग्रहणक्षम बनाते हैं।

कारण एवं परिचयः

- यह रोग पाश्पास्चुरेला मल्टोसिडा नामक जीवाणु के कारण होता है। इस रोग के लिए उत्तरदायी जीवाणु प्रभावित पशु से स्वस्थ पशु में दूषित चारे, संक्रमित लार अथवा श्वास द्वारा फैलता है।
- संक्रमण के दो से पाँच दिन तक जीवाणु सुषुप्त अवस्था में रहते हैं, परन्तु पाँच दिन के बाद पशु के शरीर का तापमान अचानक बढ़ जाता है और साथ ही रोग के अन्य लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं।
- इस रोग से प्रभावित पशुओं में मृत्यु दर (80 प्रतिशत) से भी अधिक पाई गई है।
- भैंस एवं गाय में यह रोग अधिक घातक होता है, किन्तु भेड़, बकरी ऊँट आदि में भी यह रोग देखा गया है।

लक्षणः

- रोग से प्रभावित पशु का उच्च बुखार 106–107 डिग्री फा. मिलता है और पशु खाना पीना छोड़ देता है।
- रोगी पशु को सांस लेने में कठिनाई होती है और सांस लेते समय घुर्र–घुर्र की आवाज आती है।
- रोगी पशु के नाक से स्त्राव, अश्रुपातन, मुख से लार एंव झूल के साथ–साथ गुदा के आस–पास (पेरिनियम) सूजन मिलती है।
- रोग की घातकता कम होने पर पशु में निमोनिया, दस्त या पेचिस के लक्षण मिल सकते है।
- अति प्रभावित पशुओं में गर्दन के निचले हिस्से में व पशु की छाती में शेफ (ऐडिमा) की वजह से सूजन हो जाती है।
- कालान्तर में पशु धराशायी हो जाता है।
- गंभीर अवस्था में या समय पर उपयुक्त इलाज न मिलने से पशुओं में मृत्यु दर बढ़ जाती है।

चिकित्साः

- पशु में रोग के लक्षण दिखने पर तत्काल पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।

- रोग से ग्रसित पशु को या उसके सम्पर्क में रहने वाले स्वस्थ दिखने वाले पशुओं को लम्बे परिवहन पर न ले जाएं।
- 4 मि.ली. युकेलिप्टस तेल, 4 मि.ली. मेन्था तेल, 4 ग्राम कपूर तथा 4 ग्राम नौसादर एवं 46 ग्राम कुटी सौंठ को 2 लीटर उबलते हुए पानी में डालकर पशु को भपारा दे। ऐसा दिन में दो बार करें। भाप देने के बाद पशु को सीधी हवा से बचाएं।
- 30 ग्राम अमोनियम कार्बोनेट, 30 ग्राम खाने का सोड़ा, 10 ग्राम कपूर एवं 50 ग्राम कुटी सौंठ को एक कि.ग्रा. गुड़ के साथ पशु की जीभ पर चाटने के लिए लगाएँ।
- पशु को चरने के लिए नरम व पौष्टिक चारा दें। पीने का पानी भी हल्का गरम होना चाहिए।

गलघोटू से ग्रसित पशु में गले में सूजन के कारण डिस्पनोआ (सांस लेने में तकलीफ)

रोकथाम:

- चार से छह माह की आयु में गलघोटू से बचाव के लिए प्रथम टीकाकरण लगवाएं तथा बरसात के मौसम के प्रारंभ से एक माह पहले प्रत्येक वर्ष टीकाकरण लगवाएं। जिन क्षेत्रों में गलघोटू स्थानिक बीमारी है, उन क्षेत्रों में प्रत्येक छह महीने के बाद गलघोटू से बचाव के लिए टीकाकरण किया जाता है।
- इस बात का ध्यान रखें कि गलघोटू की महामारी के समय स्वस्थ पशुओं का टीकाकरण करवाने पर भी कुछ स्वस्थ पशुओं में यह रोग हो सकता हैं ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इन पशुओं में जीवाणु पहले से ही ऊष्मायन अवधि में उपस्थित होता है।
- रोगी पशु को तुरंत प्रभाव से स्वस्थ पशुओं से अलग करें।
- महामारी के समय पशुओं को पानी पिलाने के लिए जोहड़ पर न ले जाए व घर पर ही पानी पिलाएं।
- लम्बे परिवहन से पशुओं को बचाएँ तथा परिवहन के समय पशुओं के लिए उचित आराम, चारे व पानी का प्रबंध करें।
- बाड़े में सफाई की समुचित व्यवस्था रखें एवं बाड़े को 10 प्रतिशत कास्टिक सोड़ा या 5 प्रतिशत फिनाईल या 2 प्रतिशत कॉपर सल्फेट के घोल से विसंक्रमित करें।
- गलघोटू के कारण मरे हुए पशु के शव को भलीभाँति चूने या नमक के साथ छह फीट गहरे गडढ़े में विसर्जित करे।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशुओं में पटेरा रोग : बचाव व रोकथाम

[1]विनय यादव, [2]अमरजीत एवं [1]सुभाष चंद गहलोत

[1]लाला लाजपतराय पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

[2]पशु प्रजनन विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान, इज्जतनगर (उ.प्र.)।

परिचयः

यह रोग गोलकृमि परजीवी टोक्सेकेरा वाईटूलोरम से होता है, जो भैंस, गाय (कभी–कभी भेड़–बकरियों में) की छोटी आंत में निवास करता है। यह रोग भैंस के बच्चों में अधिक होता है। इस परजीवी का संक्रमण बछड़े जन्म से पूर्व अपनी माँ के गर्भ से या जन्म के बाद दुग्ध से ग्रहण कर लेते हैं तथा जन्म के 10–14 दिन बाद से लेकर 4–6 माह तक की आयु वाले कटड़ों में यह रोग उत्पन्न होता है। समस्त परजीवी रोगों में इस परजीवी से कटड़ों में सबसे अधिक मृत्यु होती है।

रोग का प्रसारण :

यह रोग परजीवी के अंडे (परजीवी के द्वितीय लार्वा अवस्था से भरा हुआ) से दूषित चारे या पानी को पशु द्वारा ग्रहण करने से होता है। पशु की आंत में पहुँचकर परजीवी अपनी द्वितीय लार्वल अवस्था अंडे से बाहर निकल कर शरीर के विभिन्न अंगों में विस्थापित होते हैं और विलुप्त अवस्था में छिप जाते हैं। जब मादा पशु गर्भवती होती है तो यह लार्वा पलायन करके या तो भ्रूण में चले जाते हैं या फिर स्तन ग्रंथियों में पहुँच जाते हैं, ऐसा 7–8 माह की गर्भावस्था में होता है। कटड़े के जन्म के बाद दूध के साथ लार्वा आंत में पहुँच जाते हैं और 3–4 सप्ताह में यह लार्वा वयस्क में बदल जाते हैं तथा रोग उत्पन्न करते हैं।

रोगाजनकता :

कम संक्रमण से कटड़ों में ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु भारी संक्रमण (70–700 परजीवी/कटड़ा) से भारी नुकसान होता है एवं उनकी मृत्यु भी हो सकती है यह परजीवी पशु की आंत में निवास करते हैं और आंत की दीवार पर घाव का छिद्र करते हैं जिससे पाचन विकार उत्पन्न होकर पशु का स्वास्थ्य गिरने लगता है। कभी–कभी ये परजीवी झुण्ड के रूप में एकत्रित होकर आंत में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा पशु के भ्रूण अवस्था में परजीवी के लार्वा विभिन्न अंगों में पलायन के कारण कई अंगों को गंभीर रूप से क्षति पहुंचाते हैं।

रोग लक्षण :

1. दुर्गन्ध भरा कीचड़ जैसा पतला दस्त।
2. दस्त के साथ में श्लेष्मा झिल्ली, वासा एवं कभी–कभी परजीवी भी जाते हैं।
3. पशु श्वास में अक्सर सड़े मक्खन जैसी गंध आती है।
4. आंत में परजीवियों के अवरोध से कब्ज होता है।
5. पशु प्रतिदिन दुबला एवं कमजोर होता जाता है।
6. रक्त की कमी एवं त्वचा खुरदरी हो जाती है।
7. उपचार न मिलने से रोगी पशु मर भी सकता है।

निदान :

रोग लक्षणानुसार मल परीक्षण एवं शव परीक्षण से

इस रोग का निदान किया जाता है।

1. मल परीक्षण : मल परीक्षण से परजीवी के अंडे जो की गोलाकार व सूक्ष्म गड्डे युक्त एल्यूमिनी परत से ढके मिलते हैं।
2. शव परीक्षण : उदर एवं आंत में परजीवी गुच्छे के रूप में मिलते हैं। उदर शौभ, आंत शौभ, पैरीटोनिटिस, निमोनिया, दुर्बलता तथा विशिष्ट प्रकार की गंध आदि प्रमुख विकृतियां देखने को मिलती हैं।

उपचार :

1. पिपराजिन 250–300 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. भार के अनुसार एक ही खुराक पर्याप्त होती हैं यदि आवश्यक हो तो 20–25 दिन बाद एक खुराक और भी दी जा सकती है।
2. लिवामिसोल : 7.5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. भार के अनुसार।
3. फैनबेनडाजोल : 7.5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. भार के अनुसार।

रोकथाम :

यह रोग बछड़ों में बहुत अधिक मिलता है। ऐसे में गर्भवती मादा या दूध देने वाले पशुओं को पहले से ही कृमि नाशक दवा पशुचिकित्सक की सलाह अनुसार देनी चाहिए। यह रोग दूषित चारा, दाना व पानी पीने से फैलता है इसलिए पशुओं को साफ चारा व पानी देना चाहिए। बाड़े में प्रतिदिन मल–मूत्र निकलना चाहिए तथा उसको साफ सुथरा रखना चाहिए। ग्रसित पशु का कृमिनाशक दवा पिलानी चाहिए।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

निःशुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

पशुओं में जोहन्स रोग (पेराटुबरकुलोसिस): लक्षण एवं रोकथाम

शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान

पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय हिसार।

जोहन्स रोग पशुओं में होने वाला एक जीर्ण रोग है। गाय, भैंस, बकरी इस रोग से मुख्य रूप से प्रभावित होते हैं। यह रोग पशुओं में टीबी के बैक्टीरिया (माइकोबैक्टीरियम एवियम उप प्रजाति (एमएपी)) द्वारा होती है जिससे दूध का उत्पादन कम होने लगता है। यह एक लाइलाज संक्रमण है और पशु व्यवसाय के लिए भारी आर्थिक नुकसान का कारण बनता है। यह मनुष्यों में पशुओं के दुग्ध और गोबर द्वारा फैलता है।

इस रोग के जीवाणु संक्रमित पशुओं के दुग्ध में उपस्थित रहता है तथा यह पाश्चुरीकृत दुग्ध में भी नष्ट नहीं होता।

यह जीवाणु गर्भावस्था के दौरान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रेषित हो सकता है।

लक्षण :

- संक्रमित पशु महीनों तक अस्वस्थ दिखाई देता है।
- इस रोग द्वारा प्रभावित पशुओं में दस्त लगना, वजन घटना, शारीरिक दुर्बलता जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।
- संक्रमित पशुओं के दुग्ध उत्पादन में कमी आने लगती है।
- इस रोग में आँतों में सूजन हो जाता है और आँते जीर्ण हो जाती है। इसके कारण चारा पचता नहीं है और पशु कमजोर हो जाता है साथ में उसे दस्त लग जाते हैं।

चिकित्सा एवं रोकथाम

- इसका कोई सफल इलाज उपलब्ध नहीं है।
- इस रोग के नियंत्रण हेतु स्वच्छ प्रबंधन रखने की आवश्यकता है।
- नियमित परीक्षण कार्यक्रम तथा नवजात पशुओं के उचित रख रखाव से इस रोग से बचाव किया जा सकता है।
- रोग की पुष्टि होने पर संक्रमित पशुओं को तत्काल बाड़े के अन्य पशुओं से अलग करना चाहिए।
- प्रभावित पशुओं को पशुचिकित्सक के पास अवश्य ले जाना चाहिए।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

वैज्ञानिक तरीके से बछड़े की देखभाल व प्रबंधन

अमित, सुभाशिष साहु एवं दिपिन चन्द्र यादव

पशु उत्पादन प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा व पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

बछड़े भविष्य की डेयरी का निर्माण करते हैं। उत्पादन की दक्षता बनाए रखने के लिए 20% गायों को ताजा ब्याही गायों के साथ बदलना आवश्यक है। दूध उत्पादन व्यवसाय में बछड़ों की स्थापना करना सबसे मुश्किल काम है, जिसके लिए प्रबंधन कौशल, अनुप्रयोग और लगातार ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

गर्भावस्था के दौरान गाय का खानपान और प्रबंधन :

गाय के गर्भ में ही बछड़े की देखभाल शुरू हो जाती है जहां यह भ्रूण होता है। गर्भावस्था के पहले 6 महीनों में, भ्रूण की वृद्धि के कारण गाय को अतिरिक्त पोषक–तत्वों की बहुत कम जरूरत होती है। लेकिन गर्भावस्था के अंतिम 2–3 महीनों के दौरान भ्रूण तेजी से बढ़ता है जिसके लिए यह मां से महत्वपूर्ण मात्रा में पोषक–तत्व खींचता है। इसलिए गाय को अतिरिक्त खानपान द्वारा फिर से इन पोषक–तत्वों की पूर्ति करनी होती है। इस अवधि के दौरान एक गाय को अच्छी तरह से संतुलित राशन निम्नलिखित कारण के लिए दिया जाना चाहिए :

1. गाय का रखरखाव
2. भ्रूण का विकास
3. उच्च पौष्टिक मूल्य के साथ खीस का उत्पादन जो बदले में बछड़े के विकास को प्रभावित करेगा, और
4. अगले दूध उत्पादन के लिए गाय के शरीर में पोषक तत्वों के पर्याप्त भंडार।

गर्भवती गायों को ब्याने की संभावित तारीख से 1–2 सप्ताह पहले कैल्विंग पेन (ब्याने की जगह) में स्थानांतरित कर देना चाहिए। डेयरी फार्म पर आवश्यक कैल्विंग पेन की संख्या प्रजननशील गायों की संख्या का 5 प्रतिशत होता है। पशु–परिचर का क्वार्टर कैल्विंग पेन के निकट होना चाहिए ताकि गर्भवती गायों पर विशेष ध्यान दिया जा सके।

गाय में प्रसव से पहले के लक्षण :

1. अलग रहना
2. खाना छोड़ना
3. थन और लेवटी का फुलाव
4. योनी का बड़ा और पिलपिला हो जाना
5. बेचैनी

प्रसव के चरण :

1. गर्भाशय की दीवार सिकुड़ना और ग्रीवा नहर का फैलाव
2. सक्रिय निष्कासन प्रयास और भ्रूण का जन्म नहर के माध्यम से बाहर आ जाना
3. भ्रूण नाल का निष्कासन

गाय ब्याने के तुरंत बाद का प्रबंधन :

गाय के थन और लेवटी को गुनगुने पानी में एंटीसेप्टिक् डालकर धोना चाहिए और एक साफ तौलिया से सुखाना चाहिए। लेवटी से दबाव दूर करने के लिए गाय का दूध दुहा जा सकता है। यदि जन्म पर बछडे को दूध छुड़ाने (वीनिंग) का अभ्यास नहीं किया जाता है तो गाय और बछड़े को 10 दिनों के लिए कैल्विंग पेन में रहने देना चाहिए। लेकिन, यदि जन्म पर दूध छुड़ाने का अभ्यास किया जाता है, तो बछड़े को तुरंत हटा लेना चाहिए। जिन गायों में मातृ–वृत्ति अधिक है और बछड़े का दूध छुड़ाने की समस्या है तो उन गायों की आंखों को ढक कर ही बछड़े को गाय से दूर हटाना चाहिए।

नवजात बछड़े की देखभाल :

जन्म के तुरंत बाद हमें नवजात बछड़े के नाक से कफ (बलगम) को दूर करने में सहायता करनी चाहिए और बछड़े को एक साफ तौलिया के साथ पोंछते हुए सुखाना

चाहिए। बछड़े का सही सांस लेना सुनिश्चित करना चाहिए। बछड़े की नाभि को शरीर से 2–3 सेंटीमीटर छोड़कर साफ कैंची से काट कर आयोडीन की टिंचर जैसी एंटीसेप्टिक् लगानी चाहिए ताकि नाभि के माध्यम से संक्रमण के प्रवेश को रोका जा सके।

कृमिनाश (डीवॉर्मिंग) :

एस्कारियासिस गोलकृमि गाय–भैंस के नवजात बछड़ों कटड़ों में आम है और डीवॉर्मिंग को जितना जल्दी संभव हो (जीवन के पहले सप्ताह में) प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके लिए बछड़ों को 10 ग्राम पिप्राजिन एडिपेट की एक खुराक दी जा सकती है।

कोलोस्ट्रम (खीस) खिलाना :

मां का पहला दूध कोलोस्ट्रम कहा जाता है। इसमें बड़ी मात्रा में गामा ग्लोब्युलिन होते हैं जो कुछ नहीं बल्कि गाय द्वारा अपने जीवन के दौरान एंटीजन के खिलाफ निर्मित एंटीबॉडी हैं। इन एंटीबॉडिज का अवशोषण प्रारंभिक जीवन में बछड़े को कई बीमारियों के खिलाफ निष्क्रिय रोगक्षमता प्रदान करता है। इसके अलावा, कोलोस्ट्रम सामान्य दूध से सात गुना प्रोटीन और दोगुना ठोस पदार्थ वाला पोषक तत्वों का एक बहुत महत्वपूर्ण स्रोत है। इस प्रकार यह प्रोटीन और ठोस सेवन को जल्दी बढ़ावा देता है। इसमें विटामिन और खनिजों की सामान्य से अधिक मात्रा है। जब एक बछड़ा पैदा होता है तो इसमें कोई एंटीबॉडी और विटामिन–ए नहीं होते, जो रोग से निपटने के लिए आवश्यक हैं।

बछड़े का पहला गोबर (मेकोनियम) चिपचिपा और काले रंग का होता है और नवजात बछड़े को यह गोबर कोलोस्ट्रम खिलाने के 4 से 6 घंटों में निकाल देना चाहिए। कोलोस्ट्रम इसके लैक्सेटिव गुण के कारण मेकोनियम को बाहर निकालने में मदद करता है।

कोलोस्ट्रम खिलाने का समय :

बछड़े की निष्क्रिय रोगक्षमता के लिए गामा ग्लोब्युलिन को पेप्टाइड में टूटे बिना आंतों की दीवारों के पार रक्त प्रवाह में अवशोषित होना चाहिए। बछड़े के आंतों की दीवारों से ग्लोब्युलिन को केवल एक छोटी अवधि के लिए रक्त प्रवाह में अवशोषित किया जा सकता है। जीवन के पहले कुछ घंटों (1–2 घंटे) के बाद यह पारगम्यता तेजी से खो जाती है। इसे ध्यान में रखते हुए कोलोस्ट्रम की पहली खुराक जीवन के पहले 15–30 मिनट में और दूसरी खुराक लगभग 10–12 घंटों बाद बहुत उपयोगी हो सकती है।

कोलोस्ट्रम और दूध की संरचना :

घटक	कोलोस्ट्रम (%)	दूध (%)
कुल ठोस	28.3	12.86
वसा	0.15–12 (2.9)	4.00
लैक्टोज	2.5	4.8
ऐष (राख)	1.58	0.72
कुल प्रोटीन	21.32	3.34
ग्लोब्युलिन	15.06	0.00
केसीन	4.76	2.8
एल्बुमिन	1.5	0.54

कोलोस्ट्रम का विकल्प	एक खुराक
अंडा	1 पूरा
पानी	300 मिलीलीटर
अरंडी का तेल	आधा चम्मच
पूर्ण दूध	600 मिलीलीटर

कोलोस्ट्रम खिलाने की मात्रा :

एक बछड़े को पहले 3 दिनों के दौरान कोलोस्ट्रम दिया जाना चाहिए। बछड़ों को खिलाए जाने वाले कोलोस्ट्रम की मात्रा उनके शरीर के वजन पर निर्भर करती है।

कोलोस्ट्रम आहार सारणी :

समय कोलोस्ट्रम (%)	शरीर का वनज
15–30 मिनट बाद	5–8
10–12 घंटे बाद	5–8
दूसरे दिन	10
तीसरे दिन	10

अधिकांश भारतीय परिस्थितियों में 5 दिनों के लिए शरीर के वजन के 1/10 भाग कोलोस्ट्रम खिलाने की सिफारिश की गई है।

4 दिन से 90 दिन की आयु के बछड़े का खानपान :

हफ्ते	संपूर्ण दूध	सूखी घास	काफस्टार्टर
4–7वें दिन	शरीर के वजन का 1/10 भाग	इच्छानुसार	इच्छानुसार
2–8 हफ्ते	शरीर के वजन का 1/10 भाग	इच्छानुसार	इच्छानुसार
9वें हफ्ते	शरीर के वजन का 1/10 भाग	इच्छानुसार	इच्छानुसार
10 वें हफ्ते	शरीर के वजन का 1/10 भाग	इच्छानुसार	इच्छानुसार
11–13 हफ्ते	दूध नहीं		

दूध को पिलाने से पहले उबालकर शरीर के तापमान (39 डिग्री सेल्सियस) तक ठंडा किया जाना चाहिए।

बर्तन में दूध पिलाने के लिए बछड़े का प्रशिक्षण :

- दूध छुड़ाए हुए बछड़ों को बर्तन में दूध पीने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि खाने का प्रबंधन आसान हो ।
- आम तौर पर क्रॉसब्रेड बछड़े बर्तन या निपल से दूध पीना जल्दी सीख जाते हैं। लेकिन भैंस के कटड़ों को प्रशिक्षित करना बहुत मुश्किल है।
- भैंस के कटड़े आलसी और धीमी गति से दूध पीना सीखते हैं।
- उबले हुए और ठंड़े दूध की निर्धारित मात्रा दूध के बर्तन या निपल में डालकर बछड़े के पास ले जानी चाहिए।
- पशु–परिचर को अपने दो उंगलियों(सूचकांक और मध्य उंगलियां) को सफाई के बाद दूध में डुबोकर बछड़े के मुंह के करीब रखना चाहिए।
- बछड़ा दूध को चखने के बाद उंगलियों को चूसना शुरू कर देगा।
- धीरे–धीरे उंगलियों को बर्तन तक लाकर दूध में डुबो देना चाहिए।
- जब बछड़ा दूध के एक या दो मुंह ले ले तो उंगलियों को हटा लेना चाहिए।
- इस प्रक्रिया को तब तक दोहराया जा सकता है जब भी बछड़ा दूध पीने से रुक जाए और अपना सिर ऊपर उठा ले।
- भैंस के कटड़ों के प्रशिक्षण के लिए धैर्य और प्रयासों की आवश्यकता होती है।

दूध प्रतिस्थापन (मिल्क रिप्लेसर) :

इसमें मूल रूप से स्किम दूध पाउडर और चरबी या वनस्पति वसा होते हैं। ग्लूकोज, सोयाबीन आटा और अनाज के आटे का एक छोटा–सा हिस्सा भी कुछ खनिजों और विटामिनों के साथ जोड़ा जा सकता है। मिल्क रिप्लेसर जन्म के दूसरे सप्ताह से ही शुरू किया जा सकता है।

अच्छी गुणवत्ता वाले मिल्क रिप्लेसर में निम्नलिखित चीजें शामिल होनी चाहिए :

सूखा स्किम्ड दूध पाउडर	50%
उच्च गुणवत्ता वाली वसा	10–15%
प्रोटीन	22% और 25% तक
पूरक आहार	विटामिन ए, ई, बी 12
फीड एडीटीव(योजक)	एंटीबायोटिक
स्टार्च	थोड़ा या नहीं

मिल्क रिप्लेसर की संरचना :

वस्तु	मात्रा (किलोग्राम में)
सूखा मलाई निकाला दूध	70
सूखा छाछ (मट्ठा)	18
अंडे की जर्दी	2
पशु चर्बी	10
डाईकैल्शियम फॉस्फेट	1.7
नीला थोथा, लौह सल्फेट, मैंगनीज सल्फेट, एंटीबायोटिक	थोड़ी सी मात्रा

काफ स्टार्टर :

काफ स्टार्टर और पानी के मिश्रण का अनुपात – 1 : 8

ये सूखा अनाज मिश्रण बछड़ों को शुरू में खिलाया जाता है। बछड़े जीवन के दूसरे सप्ताह से सूखे स्टार्टर की एक छोटी मात्रा खाना शुरू देते हैं। एक काफ स्टार्टर ऊर्जा (75% टीडीएन) और प्रोटीन (14–16% डीसीपी) में उच्च

होना चाहिए। काफ स्टार्टर को मुफ्त–विकल्प के आधार पर खिलाया जा सकता है जब तक कि बछड़ा प्रतिदिन 1–1.5 किग्रा स्टार्टर मिश्रण का उपभोग शुरू न करे, जिसके बाद यह मात्रा प्रतिबंधित की जा सकती है। आम तौर पर बछड़ों को इस स्तर तक पहुँचने में 2½ महीने से 3 महीने लग जाते हैं। जब बछड़ा (नस्ल के अनुसार) प्रतिदिन 0.4–0.5 किलो सूखा अनाज मिश्रण खाना शुरू कर दे तो बछड़े को दूध पिलाना जल्द से जल्द बंद किया जा सकता है।

काफ स्टार्टर की संरचना :

अवयव	भाग
मक्का	42
जीएनसी	35
गेहूं/चावल की भूसी	10
फिष मील	10
खनिज मिश्रण	2
नमक	1
कुल	100

3 महीने से 6 महीने तक बछड़े का खानपान :

एक बार जब बछड़ा 2–3 महीने की उम्र तक पहुँच जाता है तो बछड़े की मृत्यु दर की सबसे जोखिम भरी अवधि और सबसे महंगे खानपान का समय बीत चुका होता है। अब इस अवधि में मध्यम गुणवत्ता वाला चारा और सरल अनाज मिश्रण पशुओं को खिलाया जा सकता है। सामान्यतः एक बछड़े को एक किलो अनाज मिश्रण प्रतिदिन प्रति 100 किलो शरीर के वजन के अनुसार खिलाया जाना चाहिए।

वीनिंग (अलग करना/दूध छुड़ाना):

बछड़े को अपनी मां से अलग करके उसका विकास करना वीनिंग कहलाता है। इस व्यवस्था के तहत, गाय द्वारा उसके बछड़े को जन्म से ही दूध नहीं पिलाने दिया जाता। इसके बजाय, गाय का पूरा दूध निकालकर बछड़े को आवश्यक मात्रा में संपूर्ण दूध या मलाई निकाला हुआ दूध पिलाया जाता है।

लाभ :

- बछड़ों को दूध एक निर्धारित मात्रा में पिलाया जा सकता है।
- किसी विशेष ब्यात में गाय द्वारा निर्मित दूध की सटीक मात्रा दर्ज की जा सकती है।
- स्वच्छ दूध का उत्पादन किया जा सकता है।
- गाय के ज्यादा दूध पिलाने से बछड़े में होने वाले दस्त को रोकता है।
- बछड़े की मृत्यु के बाद भी गायों का दूध देना जारी रहता है।

हानि :

- मजबूत मातृवृत्ति के कारण, देसी गाय और भैंसों में यह एक समस्या है।
- 0 दिन से बछड़े को ऐसे दूध पिलाने से गाय में कम दूध पैदा हो सकता है और दूध सुखाने और मनोवैज्ञानिक समस्याएं हो सकती हैं।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशुओं में फ्लोरोसिस : कारण एवं लक्षण

ज्योत्सना मदान एवं मीनाक्षी गुप्ता

पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रकृति में कुछ ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो सूक्ष्म से अल्पमात्रा में स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते है और अगर उसका सेवन निर्धारित मात्रा से अधिक हो तो गंभीर बीमारियों का सृजन हो सकता है। फ्लोराइड भी इसी श्रेणी में आता है। फ्लोरीन हेलोजेन्स से संबंधित एक गैर–धातुत्मक असंतुलित तत्व जो आमतौर पर एक पीले रंग का विषाक्त ज्वलनशील गैस है। फ्लोराइड फ्लोरिन का सरलतम आयन है इसके लवण और खनिज महत्वपूर्ण रासायनिक अभिकर्मकों और औद्योगिक रसायन हैं।

फ्लोराइड आयन पृथ्वी पर कई खनिजों में पाए जाते हैं, विशेष रूप से फ्लोराइड, लेकिन पानी में ट्रेस मात्रा में मौजूद होते हैं। फ्लोराइड एक विशिष्ट कड़वा स्वाद का योगदान देता है यह फ्लोराइड लवण के लिए कोई रंग का योगदान नहीं करता है। यह सूक्षम मात्रा में दांतो के इनेमल की सुरक्षा के लिए आवश्यक है वही इसके अत्यधिक सेवन से बीमारी का कारन बन जाता है। फ्लोरोसिस रोग का फैलाव देश के बड़े भू–भाग में हो चुका है और 19 राज्य इसके चपेट में हैं। इसने पेयजल के जरिए मिलने वाले पोषण को नुकसान पहुँचाया है। जमीन से निकाला गया ऐसा पानी पीते हैं, जिसमें प्रति लीटर पानी में 1.5 मिलिग्राम (मि.ग्रा.) से भी ज्यादा फ्लोराइड है। लम्बे समय तक निर्धारित से अधिक मात्रा में फ्लोराइड के अन्तर्ग्रहण से 'फ'लोरोसिस' होता है। ग्रामीण जनसंख्या, जो पेयजल के एकमात्र स्त्रोत मुख्यतः गहरे खुदे हैण्डपम्पों पर निर्भर रहती है, उन पर सर्वाधिक बुरा असर पड़ा है। भारत में पीने के पानी का मुख्य स्त्रोत भूजल है। यह भूजल गांव की 85 प्रतिशत जल की आवश्यकता को पूरी करता है। सिंचाई के लिए भी यह जल आवश्यक है। फ्लोरोसिस को गुजरात में वाह, मध्य प्रदेश में गेनू वालगम, राजस्थान में बंका पट्टी और उत्तर प्रदेश में लुंज–पुंज के नाम से पुकारा जाता है।

हरियाणा के 28 जिलों में भूजल में फ्लोराइड की मात्रा निर्धारित मात्रा से अधिक है। इनमें से मुख्य प्रभावित जिले भिवानी, फरीदाबाद, गुड़गाँव, झज्जर, जींद, कैथल, महेंन्द्रगढ़, रेवाड़ी, रोहतक, सिरसा एवं पानीपत है। हरियाणा के सेमि एरिड हिस्से के भूजल में फ्लोराइड की अधिकता पाई जाती है। इस बीमारी से मुख्यतः गाय, भैंस, बकरी, भेड़ एवं ऊंट प्रभावित होते हैं।

फ्लोराइड के मुख्य स्त्रोत हैं :

- पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा का ज्यादा होना।
- भूजल में फ्लोराइड की बढ़ती मात्रा।
- मृदा में मिश्रित रसायनिक खाद और कारखानों से निकले दूषित पानी का भूजल व मृदा में मिलना।
- सिंचाई के पानी से फ्लोराइड का मिट्टी में बहाव व मिलना जिसके फलस्वरूप फसलों में फ्लोराइड की मात्रा का बढ़ना।
- पशुओं के चारे में खाद्य पूरक खनिज मिश्रण में आवश्यकता से अधिक मात्रा में मिलाना।

इन सबके निरंतर सेवन से फ्लोराइड पशुओं के शरीर में हड्डियों में प्रवेश कर जाता है और विकृति पैदा करता है।

पानी में फ्लोराइड की निर्धारित मात्रा :

1. भारतीय मानक ब्यूरो – 0.6–1.2 मिलीग्राम/लीटर
2. भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद्– 1.0 मिलीग्राम/लीटर

3. लोक स्वास्थ्य अभियंता विभाग, भारत सरकार –1.0 मिलीग्राम/लीटर

4. विश्व स्वास्थ्य संगठन – 1.5 मिलीग्राम/लीटर

पेय जल जिसमें फ्लोराइड 2–3 पीपीएम से ज्यादा है, उसका निरंतर सेवन करने से फ्लोरोसिस होने का खतरा रहता है। इस बीमारी की वजह से मुख्य व्यवसाय, यानी कृषि का काम बाधित हो गया है। फ्लोराइड युक्त पानी जमीन और फसल दानों के लिये बुरा है। अहमदाबाद स्थित आगा खां रूरल सपोर्ट प्रोग्राम के रमन पटेल कहते हैं कि फ्लोराइड प्रभावित गाँवों से लोग पशु भी नहीं खरीदना चाहते हैं। फ्लोरोसिस किसी एक स्थान की समस्या नहीं है। यह कई राज्यों में और विभिन्न क्षेत्रों तक फैली हुई है – थार मरूस्थल, गंगा तट के मैदानी इलाके से दक्षिणी पठार तक। इसके फैलाव में हर इलाका बारिश, मिट्टी की किस्म, भूजल पुनर्भरण व्यवस्था, मौसमी दशा और भूजल विज्ञान के मायने से अनूठा है।

भूजल में फ्लोराइड की काफी ज्यादा संघनता :

राजीव गाँधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन (आरजीएनडी डब्ल्यूएम) की रिपोर्ट के मुताबिक, भारतीय प्रायद्वीप के शिलान्त में फ्लोराइड उत्पन्न करने वाले कई खनिज मौजूद हैं: फ्लोराइड, टोपाज, एपेटाइट और रॉकफॉस्फेट पिंड और फॉस्फॉराइट (इनमें सभी में फ्लोराइड की काफी संघनता है)। जब शिलान्त छीजता है तो एक ऐसी प्राकृतिक रासायनिक प्रक्रिया चलती है, जिसमें चट्टान में धीरे–धीरे मिट्टी जमने लगती हैं–फ्लोराइड ऐसे में पानी और मिट्टी में रिसने लगता है। इसका रिसाव कई बातों पर निर्भर करता है। पानी का रासायनिक संयोजन, पानी में फ्लोराइड खनिजों की मौजूदगी और उस तक पहुँच और स्त्रोत खनिज तथा पानी के बीच सम्पर्क का समय। मिसाल के तौर पर गहरे कछारी भूजल भण्डारण में भारी मात्रा में पानी होता है, जो कि भू–पटल निर्माण के समय में जमा होता है और इसीलिये इसके तल में ज्यादा सघन फ्लोराइड हो सकता है। सख्त चट्टान के भूजल भण्डारण का पानी इनकी दरारों में जमा होता है, लेकिन इन चट्टानों के ज्यादा समीप होने से भी पानी में ज्यादा फ्लोराइड हो सकता है, खासकर तब जब इसका भूजल पुनर्भरण से ज्यादा बाहर खींचा जाता हो। मौसमी परिस्थितियों से भी भूजल भण्डारण में फ्लोराइड की सीमा तय होती है। जैसे, वर्ष 2002 के एक पेपर 'फ्लोराइड' इन शेलो एक्विफर इन राजगढ़ तहसील ऑफ चुरू डिस्ट्रिक, राजस्थान एन एरिड इन्वायरन्मेंट–जो कि करेंट साइंस में छपा, में इस बात को उठाया गया कि भारी वाष्पीकरण वाले शुष्क मौसम और बहुत ही कम प्राकृतिक पुनर्भरण के कारण हो सकता है कि इस (चुरू जिले) क्षेत्र के भूजल में फ्लोराइड की ज्यादा सान्द्रता बनी हो।

बीमारी की वजह और लक्षण :

फ्लोराइड पानी के जरिए शरीर में आता है। 96–99 प्रतिशत हड्डियों में घुस जाता है क्योंकि फ्लोराइड कैल्शियम फास्फेट के साथ बहुत जल्दी घुलती है। फ्लोरोरिस दो प्रकार की होती है :

(1) स्केलेटल फ्लोरोसिस– दाँतों के फ्लोरोसिस से दाँतों का रंग प्रभावित होता है और वो काले हो जाते हैं। हड्डी के फ्लोरोसिस से हड्डियाँ हमेशा के लिये विकृति हो सकती है।

(2) नान–स्केलेटल फ्लोरोसिस से पेट और दिमाग की बीमारियाँ हो सकती हैं। फ्लोरोसिस के प्रभाव शरीर पर कई जगह देखे जा सकते हैं– गला, घुटने, कंधे, हाथों और पैर के जोड़ों पर। पाचन तन्त्र को भी यह कई तरीके से प्रभावित करता है। जैसे– पेट में दर्द, दस्त, कब्ज। दिमाग पर इसके असर के लक्षण है–बहुत ज्यादा प्यास लगना और बार–बार पेशाब लगना। पर फ्लोरोसिस की बीमारी का पता जल्द नहीं लगता है। इसका एक कारण यह है कि उसके लक्षण अर्थराइटिस, स्पान्डलाईटिस वगैरह की तरह होते हैं। इसके बहुस्तरीय प्रभाव शरीर के ऊतकों, अंगों और विभिन्न प्रणालियों पर होते हैं और इसके कारण विभिन्न रोगों के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जैसे दाँतों पर चितकबरापन, जठराव सम्बन्धी रोगों की समस्या का होना तथा अस्थि संरचना में कड़ापन आदि।

फ्लोरोसिस से बचाव के उपाय :

- पानी व मिट्टी की समय पर जांच कराये।
- फसलों में भी फ्लोराइड की मात्रा की जांच कराये।
- खून और मूत्र की जांच कराये।
- दांतों की जांच से भी फ्लोरोसिस का पता लगाया जा

सकता है।

- पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा के नियंत्रण हेतु बहुत सी तकनीकियां खोजी गई हैं। इनमें नालगोंडा विधि तथा एक्टीवेटेड अल्युमिना क्षेत्रपिरिक्षित और विस्तृत रूप से अभ्यासित तकनीकियां हैं। विद्युतीय फ्लोराइड अपघटन एक नवीनतम पद्धति है। इस पद्धति में एल्युमीनियम धनाग्र का घुलन, सीधे विद्युत से फ्लोराइड युक्त पानी में किया जाता हें प्रयोगशाला में पेयजल से 3–4 मि.ग्रा./लीटर फ्लोराइड की अधिक मात्रा दूर करने हेतु विद्युतीय (इलेक्ट्रोलिटीक) पद्धति से बॅच क्रिया का अध्ययन किया गया तथा प्रयोगशाला अध्ययन पर आधारित विद्युतीय फ्लोराइड अपघटन सयंत्र डोंगरगांव में लगाया गया। यह सयंत्र पानी से फ्लोराइड की मात्रा 3.4–4.5 मि.ग्राम/लीटर से 1.00 मि. ग्राम/लीटर तक लाता है। सन्तुलित आहार, विशेष रूप से कैल्शियम और विटामिन सी की प्रचुरता वाला आहार फ्लोराइड के दुष्प्रभावों से लड़ने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। पशुओं को फ्लोरोसिस प्रभावित क्षेत्र से दूर ले जाए।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

पशुओं में पीपीआर रोग: लक्षण, निदान एवं रोकथाम

शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान

पशु दैहकी एवं जीव रसायन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय हिसार, हरियाणा।

पीपीआर जुगाली करने वाले पशुओं में पाए जाने वाला रोग है। इसे गोट प्लेग, जुगाली करने वाले छोटे पशुओं का प्लेग इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। यह एक विषाणुजनित रोग है जो की पी पी आर वायरस द्वारा होता है। संक्रमण होने के दो से सात दिन में इसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

लक्षण :

- इसमें आँख एवं नाक से पानी आना, दस्त, श्वेत कोशिकाओं की अल्पता, श्वास लेने में कष्ट इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं।
- नाक व मुख से आने वाले लसलसे से पदार्थ में पस आने लगती है जिससे बदबूदार दुर्गन्ध आती है।
- प्रेग्नेंट पशुओं का गर्भापात हो जाता है।
- बुखार आने के चार से छः दिन पश्चात अमूमन पशुओं की मृत्यु हो जाती है।
- पी पी आर वायरस के संक्रमण से तकरीबन 90 फीसदी मृत्यु–दर होती है।

रोग फैलने के कारण :

- पशुओं के अत्यधिक निकट संपर्क से ये रोग फैलता है।
- बकरियों में भेड़ों की अपेक्षा ये रोग जल्दी फैलता है।
- गौ वंश में भी इस रोग का संक्रमण हो सकता है परन्तु ये गायों से अन्य पशुओं में संचारित नहीं हो पाता है।
- इस रोग का विषाणु बहुत अधिक समय तक बाहरी वातावरण में जीवित नहीं रह पाता व अत्यधिक धूप एवं तापमान होने के कारण नष्ट हो जाता है।

निदान एवं रोकथाम :

- पी पी आर के लक्षण विभिन्न अन्य बिमारियों जैसे केप्रीपॉक्स, ब्लू टंग, खुरपका मुहपका रोग, इत्यादि जैसे ही होते हैं। अतः उचित प्रयोगशाला जांच द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है।
- पी पी आर वायरस लिम्फोइड अंगों को क्षति पहुंचाता है, जिसकी वजह से रक्त में श्वेत रक्त कणिकाओं की कमी हो जाती हें
- पी पी आर वायरस का मुख और नाक के स्त्रावों में उचित प्रयोगशाला की जांच से, बिमारी के लक्षण आने के पहले ही पता लगाया जा सकता है। अतः पी पी आर के लक्षण दिखने पर लार व नाक से निकलने वाले स्त्रावों को प्रयोगशाला में जांच के लिए भिजवाना चाहिए।
- पी.पी.आर नियंत्रण के लिए टीकाकरण बहुत प्रभावी और सुरक्षित हैं।
- पी.पी.आर टीके का उपयोग मुख्यतया उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु में होता हैं। अतः टीके को ठन्डे तापमान पर रखना चाहिए। यद्यपि ऐसा करना महंगा और असुविधाजनक होता हैं।
- पी पी आर के विषाणु विरोधी दवा अभी तक उपलब्ध नहीं है। एंटीसेप्टिक मलहम और एंटीबायोटिक दवा से पशुओं में अतिरिक्त बैक्टीरियल संक्रमण को रोकने का प्रयास किया जाता है।

गाय एवं भैंसों में गर्भपात की समस्या, कारण, निदान व रोकथाम

[1]अमरजीत बिसला, [2]विनय यादव एवं [2]रविदत्त

[1]पशु प्रजनन विभाजन, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उ.प्र.)

[2]मादा पशु एवं प्रसूति रोग विभाग, लुवास, हिसार (हरियाणा)।

प्रजनन क्षमता बच्चे पैदा करने की क्षमता डेयरी मवेशियों (गायों) और भैंसों के जीवन काल प्रजनन के प्रदर्शन का प्रमुख निर्धारक हैं। इसका आंकलन डेयरी गाय की प्रति वर्ष एक बछड़ा पैदा करने की क्षमता से किया जाता है। यौवन प्राप्त करने के बाद पशु प्रजनन चक्र से गुजरता है और गर्भावस्था को प्राप्त करता है। गर्भावस्था अवधि के दौरान पशुओं को विशेष देखभाल और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। विभिन्न बिमारियाँ गर्भावस्था के दौरान पशुओं को प्रभावित करती है और गर्भावस्था की सामान्य प्रगति को बाधित करती है, जिसमें से गर्भपात एक प्रमुख कारण है। गर्भपात को पहचानने के लिये मृत या जीवित भ्रूण के आकार से सामान्य जन्म के शेष दिनों को परिभाषित किया गया है तथा वह स्वतंत्र अस्तित्व के लिए असमर्थ होता है। मवेशियों और भैंसों में गर्भपात के कई कारण होते हैं, जो मूलतः दो प्रकारों में विभाजित किये जाते हैं : (1) संक्रामक कारण, (2) असंक्रामक कारण।

1. संक्रामक कारण :

i) ***जीवाणु कारण***

क) ब्रूसेलोसिस ख) लेप्टोस्पायरोसिस

ग) लिस्टरियोसिस घ) तपेदिक क्षय रोग

ड) कम्पायलोबैक्टीरियोसिस च) माइकोप्लाजमोसिस

ii) ***विषाणु कारण***

क) संक्रामक पस्चयुल वल्वोवैजिनाइटिस (आईपीवी)

ख) गोजातीय वायरल डायरिया–म्यूकोजल रोग (बीवीडी–एमडी)

iii) ***क्लैमाइडियल गर्भपात***

iv) ***फफूंदी रोग के कारण गर्भपात***

v) ***प्रोटोजोअल***

कारण :

क) ट्राईकोमोनियासिस ख) नीयोस्पोरियोसिस

2. असंक्रामक कारण :

क) सायन, ड्रग्स, धातुएं–आर्सेनिक, तथा नाइट्रेट जहर, और जहरीले पौधे जैसे कि लोको–वीड्स, पाइन वीड्स या अन्य जहरीली खरपतवार

ख) हार्मोनल कारण ग) पोषण संबंधी कारण

घ) शारीरिक कारण ङ) आनुवंशिक क्रोमोसोमल

कारण : गर्भपात के कारण बछड़े और दुग्ध उत्पादन का नुकसान होता है जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है और पशुओं में बांझपन की समस्या उत्पन होती है। गर्भपात के संक्रामक कारक एक जानवर से दूसरे में रोगों के प्रसार के लिए जिम्मेदार होते हैं और पशुओं के समुह में गर्भपात के तूफान (एक साथ कई पशुओं में गर्भपात) का कारण बनते हैं। इस प्रकार, गर्भावधि के दौरान जानवरों की देखभाल करना और डेयरी किसानों के लाभ के लिए, गर्भपात को रोकना अति महत्वपूर्ण है।

गर्भपात के मुख्य संक्रामक कारण इस प्रकार के रोग संक्रमण कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक संभोग से फैलते हैं। एक विशिष्ट संक्रमण पूरे समूह को प्रभावित कर सकता है। इसमें ब्रूसेलोसिस, केमपाइलोबैक्टीरियोसिस, ट्राइकोमोनीएसिस, आईबीआर–आईपीवी संक्रमण शामिल हैं।

i) जीवाणु कारण :

क) ब्रूसेलोसिस–

कारण : यह बीमारी, बैंग की बीमारी, माल्टा बुखार, क्रीमिया बुखार, रॉक बुखार, और जिब्राल्टर बुखार के रूप में भी

जानी जाती है। मवेशियों और भैंसों में यह रोग ब्रूसेला अबोरट्स जीवाणु के कारण होता है।

लक्षण : गर्भपात गर्भावस्था की तीसरी तिमाही के दौरान होता है। फिर पशु स्थायी वाहक के रूप में कार्य करता है क्योंकि यह जीवाणु पूरे जीवन के लिए पशु के शरीर में बना रहता है और समुह के अन्य जानवरों और मनुष्यों को भी संक्रमण हो सकता है। यह एक जूनोटिक (पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाला) रोग है। संक्रमण का प्रमुख मार्ग संक्रमित भोजन और पानी के माध्यम से होता है। संक्रमण का प्रमुख स्रोत गर्भपात पीड़ित पशु होता हैं जिनसे भ्रूण, नाल, भ्रूण तरल पदार्थ और दूध अत्याधिक दूषित होते हैं जो दूसरे पशुओं तक रोग फैलाते हैं। यदि कच्चे दूध का सेवन किया जाता है तो मनुष्यों में भी बीमारी हो जाती है। यह जीवाणु बरकरार त्वचा के माध्यम से भी शरीर में घुस सकता है। पशुओं में प्राकृतिक संभोग के कारण यह रोग नहीं फैलता है क्योंकि गर्मी के समय योनि की दीवार बहुरेखित स्तरीकृत होती है, इसलिए जीवाणु प्रवेश नहीं कर सकता है और दूसरा, यह जीव गैर गतिशील भी होता है। कृत्रिम गर्भाधान में वीर्य को सीधे गर्भाशय में डाला जाता है और यदि वीर्य ब्रूसेला जीवाणु से संक्रमित होता है तो संक्रमण का कारण बनता है। इसके बाद, यह प्लेसेंटा (नाल/जेर) की सूजन का कारण बनता है और बाद में गर्भपात होता है। गर्भपात के कुछ दिनों के बाद, जीव गर्भाशय और गर्भाशय के निर्वहन से गायब हो जाते हैं और लसीका (लिम्फ) नोड्स में स्थानीयकृत हो जाते हैं।

रोग के मुख्य लक्षणों में गर्भावस्था की तीसरी तिमाही में गर्भपात एवं गर्भपात के सभी मामलों में जेर का रुकना शामिल हैं। जेर सूखी, चमड़े जैसी और बीच–बीच में पीले रंग की दिखाई देती है। अधिकांश मामलों में गर्भपात के तुरंत बाद भ्रूण मर जाता है या मरा हुआ पैदा होता है।

निदान :

- पुराना रिकॉर्ड और लक्षण
- अंतिम तिमाही में गर्भपात और जेर का रुकना
- दूध रिंग टेस्ट यह टेस्ट समुह में ब्रुसेलोसिस के निदान के लिए उपयोग किया जाता है। इस परीक्षण में, ब्रूसेला के खिलाफ एंटीबॉडी का पता लगाया गया है। 1 मि.ली. दूध का एक बूंद (30 माइक्रो लीटर) एंटीजन के साथ मिलाया जाता है और एक घंटे के लिए 37^{o} सेल्सियस पर रखा जाता है। सकारात्मक मामलों में एक नीली रिंग (छल्ला) सफेद दूध के कॉलम के ऊपर होती है। नकारात्मक मामलों में कोई रिंग नहीं बनती है।
- सीरम एग्लूटीनेशन टेस्ट
- रोकथाम और नियंत्रण–पशुओं में संक्रमण के उपरांत इस बीमारी का कोई इलाज नही है लेकिन इसे फैलने से रोका जा सकता है।
- इसे उचित स्वास्थ्य परिस्थितियों को बनाए रखने से रोका जा सकता है।
- टेस्ट और हटाने या संक्रमित पशुओं के अलगाव की नीति
- ब्रूसेला एस–19 लाइव टीके के साथ टीकाकरण करके। यह एक कम उम्र में लगाया जाने वाला वैक्सीन टीका है। इस वैक्सीन के 2 मिलीलीटर (ब्रूवेक्स, इंडियन इम्युनोलॉजिकल) को मादा पशु में 4–8 महीने की उम्र में लगाया जाता है। नर और गर्भवती पशुओं को टीका नहीं लगाया जाता है। यह गर्भवती जानवरों में गर्भपात और पुरुषों में वृषण की सूजन का कारण हो सकता है।

ख) लेप्टोस्पायरोसिस

कारण : लेप्टोस्पायरोसिस मवेशियों और अन्य स्तनधारियों का एक महत्वपूर्ण जूनोटिक (पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाला) रोग है और लेप्टोस्पाइरा नाम के जीवाणु के कारण होता है।

लक्षण : संक्रमण त्वचा , आँखों, मुंह या नाक की झिल्ली के माध्यम से प्रवेश कर सकते हैं। यह प्राकृतिक सम्भोगिक क्रिया के बाद वीर्य में प्रसारित होता है। जीवाणु विशेष रूप से मूत्र में स्त्रावित होता है और जो संक्रमण के स्रोत के रूप में कार्य करता है। हेपेटाइटिस, नेफ्रैटिस (गुर्दे का संक्रमण) और लहु मुतना हो सकता है तथा गर्भपात गर्भावस्था के 6 महीने के बाद सबसे अधिक होता है।

निदान : गाय एवं भैंस में लेप्टोस्पायरोसिस का निदान ब्रूसेलोसिस से मुश्किल होता है।

- पशु विकृति विज्ञान विशेषज्ञ की सलाह से निदान सरल होता है।
- नमूनों की सिल्वर स्टैनिंग निदान में मदद कर सकता है।
- कोशिका समागमन परीक्षण (केपिलरी टेस्ट) निदान के लिए प्रयोग किया जाता है।

रोकथाम एवम उपचार :

- चूंकि लेप्टोस्पायरोसिस का उन्मूलन संभव नहीं है, गोजाती लेप्टोस्पायरोसिस के नियंत्रण और उपचार को स्वच्छता, टीकाकरण और एंटीबायोटिक उपचार द्वारा पूरा किया जा सकता है।
- लेप्टोस्पायरोसिस के तीव्र चरण के उपचार में एंटीबायोटिक दवाओं की बड़ी खुराक पेनिसिलिन (3 मिलियन यूनिट), और स्ट्रेप्टोमाइसिन (5 ग्राम) सहित दो बार प्रतिदिन शामिल है।

ग) लिस्टरियोसिस :

कारण : लिस्टिरिया मोनोसाइटॉजिन्स जीवाणु मुख्य रूप से भेड़ और मवेशियों में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का रोगजनक है जिसमें यह एन्सेफलाइटिस का कारण बनता है। लिस्टिरिया मोनोसाइटॉजिन्स वातावरण में सर्वव्यापी है। मिट्टी, सीवेज का प्रवाह, पशु बाड़ा और खाद्य पदार्थों में यह मौजूद रहता है।

लक्षण : गर्भपात के मामलों में संक्रमण का स्रोत घास के साइलेज है जो मोटे तौर पर मिट्टी से दूषित होती है और कम सूखे पदार्थ की सामग्री होती है या अपर्याप्त किण्वन से गुजर रहा होता है। गर्भपात आम तौर पर गर्भावस्था के अंतिम तीन माहों में होते हैं। लिस्टरियोसिस से ग्रसित पशु को एक तरफ का लकवा रोग हो जाता है जिसकी वजह से पशु का एक तरफ का कान व आंख काम नहीं करते हैं तथा पशु खड़ा रहकर एक तरफ से चक्कर लगाता रहता है।

निदान :

- गर्भावस्था के अंतिम काल में गर्भपात होना।
- बच्चे के दिमाग में फोड़ा मिलना।

रोकथाम एवम उपचार :

- साइलेज को सही प्रकार से बनायें।
- रोगी पशु को दुसरे पशुओं से अलग रखने।
- रोगी पशु का उपचार टेट्रासाइक्लिन एंटीबायोटिक से करवायें।

घ) तपेदिक क्षय रोग (टीबी)

कारण : यह मायकोबैक्टीरियम बोविस नामक जीवाणु के कारण होता है। यह मुख्य रूप से संक्रमित भोजन या पानी से संचारित होता है। यह प्राकृतिक संभोग के द्वारा भी संचारित होता है।

लक्षण : संक्रमण के बाद, पशु काफी कमजोर हो जाता है और उसकी पसलियाँ दिखने लगती हैं। गर्भाशय से पीले रंग का स्त्राव देखा जाता है। क्षय रोग से गाय एव भैस दोनों में गर्भपात गर्भावस्था के किसी भी काल में हो सकता है।

रोकथाम एव नियंत्रण :

- कोई इलाज नहीं है।
- इसे केवल उचित स्वच्छ उपायों को अपनाने से रोका जा सकता है।
- ग्रसित पशु को बाकी पशुओं से अलग रखना चाहिये।

ङ) कम्पायलोबैक्टीरियोसिस (विब्रिओसिस) :

कारण : यह कैम्पय्लोबक्टेर फीटस उपप्रजाति वेनेरेलिस नामक जीवाणु की वजह से होने वाली मवेशी की एक मस्तिष्क की बीमारी है। सांड इस रोग के लिए स्थायी वाहक का काम करते हैं। वे संभोग के दौरान मादा से मादा पशु को संचारित करते हैं। यह जीवाणु मादा जननांग, नाल और सांड के वीर्य में पाया जाता है। यह संक्रमित सांड से प्राप्त वीर्य के कृत्रिम गर्भाधान द्वारा भी मादा पशुओं में फैल सकता है।

लक्षण : जब पशुओं के समुह में संक्रमण होता है, तो गर्भधारण दर में एक नाटकीय कमी होती है। गर्भावस्था के शुरूआती दिनों में भ्रूणिक मृत्यु के बाद मादा गर्मी/मद अवस्था में लौट जाती है जो गर्मी/मद के 25 दिनों से अधिक समय पर अनियमित होती है। आमतौर पर गर्भावस्था के 2–4 महीने में पशुओं की एक छोटी संख्या में गर्भपात होता

है, हालांकि न तो बड़ी संख्या में गर्भपात और न ही गर्भपात वाले तूफान इस रोग की विशेषताएं हैं। लगभग 6 महीने के लिए गंभीर बांझपन का सामना करने के बाद, एक समुह धीरे–धीरे प्रतिरक्षा और संक्रमण से मुक्त हो जाता है। गायों का पुनः संक्रमण तब होता है जब संक्रमित सांड से पुनः मिलान करवाया जाता है। संक्रमित सांड से पहली बार ब्याने वाली मादाओं में कम गर्भाधान की दर और गर्मी मद पर अनियमित काल बाद वापसी होती है। इस रोग में प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु, बांझपन और लंबे समय तक गर्भ ना ठहरना मुख्य लक्षण होते हैं।

निदान :

- लम्बे समय से गायों के समुह में बाँझपन
- 3–4 महीने पर गर्भपात
- एलाइजा टेस्ट
- नमूनों से जीवाणु की लेबोरेट्री में पहचान

रोकथाम एव उपचार :

- ग्रसित पशुओं को 4–6 महीने तक प्रजनन से आराम।
- झुण्ड में नये व युवा सांड का उपयोग।
- सांड की लगातार 6 महीने के अन्तराल पर जाँच।

च) माइकोप्लाजमोसिस :

कारण: यह माइकोप्लाज्मा बोवीजिनेटालियम जीवाणु के कारण होता है और संक्रमित वीर्य के साथ कृत्रिम गर्भाधान द्वारा प्रेषित होता है। इस रोग को दानेदार या नोडयुलर वुल्वो–वैजीनाटाइटिस के रूप में भी जाना जाता है।

लक्षण: योनि में विशेष रूप से भगशेफ के आसपास 1–3 मि.मी. व्यास के संक्रमण फोड़ों का गठन हो जाता है। पशु योनि परीक्षण के साथ व संभोग के बाद दर्द महसूस करते हैं। इस बीमारी में गर्भपात गर्भावस्था के 5 से 7 महीनों के दौरान होता है।

रोकथाम : प्राकृतिक संभोग से बचने और रोग मुक्त तथा एंटीबायोटिक उपचारित वीर्य के साथ कृत्रिम गर्भाधान करने से इस रोग को रोका जा सकता है।

ii) विषाणु कारण

क) संक्रामक पस्चयुलर वल्वोवैजिनाइटिस (आईपीवी)

कारण : यह बोवाइन हर्पीस वायरस–1 (बीएचवी–1) के कारण होता है। यह मवेशियों के एक तीव्र श्वसन रोग का कारण बनता है। जननांग प्रणाली की बीमारी संक्रामक पस्चयुलर वल्वोवैजिनाइटिस (आईपीवी), वैसिक्युलर वैनियरयल रोग और कॉयटल वैसिक्युलर एकशनथीमा के रूप में जाना जाता है। बीएचवी –1 बीमारी के जननांग प्रकार के साथ साथ श्वसन रोग का भी कारण बनता है, हालांकि बीमारी के दोनों रूप आमतौर पर स्वतंत्र रूप से होते हैं बीएचवी–1 भी गर्भपात का कारण बनता है, जो सामान्यतः बीमारी के जननांग रूप से श्वसन के बाद होता है।

लक्षण : बीएचवी–1 प्रथम बार ग्रसित होने वाली मादाओं और गायों में बांझपन के साथ भी जुड़ा हुआ है। जननांग रूप गर्मी के समय मिलान, दूषित बाड़ा और आपसी शारीरिक लड़ाई द्वारा संचारित होता है। गर्भपात 4 महीने से लेकर 8 महीने की गर्भावधि तक होता है।

रोकथाम :

- जननांग घाव स्वत ठीक हो जाते हैं, इसलिए कोई इलाज आवश्यक नहीं है।
- संक्रमित जानवरों को पृथक किया जाना चाहिए।
- मादा पशुओं को छह महीने की आयु में जीन एटीन्यूएटेड वैक्सीन के साथ टीका लगाया जाना चाहिए, इसके बाद वार्षिक टीकाकरण किया जाना चाहिए।
- गर्भवती पशुओं को किल्ड वैक्सीन के साथ टीका लगाया जाना चाहिए।

ख) गोजातीय वायरल डायरिया–म्यूकोजल रोग (बीवीडी–एमडी)

कारण : बीवीडी विषाणु एक पेस्टी विषाणु है।

लक्षण : रोग की पहचान तेज बुखार, पानी जैसे दस्त, नाक से स्राव, मुँह के छाले और लंगड़ापन द्वारा की जाती है। बीवीडी वायरस से दूषित वीर्य के साथ कम गर्भधारण दर होती है। गर्भपात गर्भावस्था के किसी भी स्तर पर हो सकता है। अधिकांश नुकसान तीसरे तिमाही से पहले होते हैं। गर्भ के 5–6 महीने से दिमाग और आंख के जन्मजात असामान्यताओं वाले बछड़ों का गर्भपात या जन्म हो सकता है।

iii) क्लैमाइडियल गर्भपात

कारण : क्लैमाइडिया सितासाईं नर और मादा जननांग मार्ग दोनों का एक रोगाणु है। प्रभावित सांड के वीर्य में कभी–कभी जीव पाया जाता है। विशेष रूप से, गर्भपात नैदानिक संकेतों के बिना गर्भ के अंतिम तिमाही के दौरान होता है। गर्भपात मौसमी होते हैं।

लक्षण : गर्भपात के लिए जोखिम के समय पशुओं को 6 महीने से कम गर्भवती होना चाहिए। जेर के बीच कुछ क्षेत्रों का मोटा होना, चमड़े और लाल सफेद अपारदर्शी मलिनकरण और एडिमा (सूजना) काफी आम है। एक बार गर्भपात होने के बाद पशु प्रतिरक्षा करता है, इसलिए सबसे बड़ा जोखिम पहली बार ब्याने वाली मवेशियों को होता है।

iv) फफूंदी रोग के कारण गर्भपात

कारण : यह म्यूकोर, एब्सिडिया, राइजोपस और एस्परजिलस जैसे कवक, फफूंदी के कारण होता है। यह आमतौर पर सर्दी के मौसम के दौरान घास या साइलेज खाने के कारण होता है क्योंकि साइलेज और घास में कवक बहुत अच्छी तरह से पनपती है।

लक्षण : संक्रमण होने पर गर्भावस्था के 4–9 महीनों के दौरान यह गर्भपात का कारण बनता है। गर्भपात के उपरांत चमड़ी पर दाद के आकर के छल्ले प्रतीत होते हैं।

निदान : भ्रूण या नाल से फंगल कवक हाइफा के प्रदर्शन से निदान किया जा सकता है।

उपचार : इसे माईकोस्टाटिन देकर इलाज किया जा सकता है।

v) प्रोटोजोअल कारण

क) ट्राईकोमोनियासिस

कारण : यह एक क्लासिक यौन रोग है जो संभोग के दौरान नर से मादाओं में संचारित होता है। कारक जीव ट्राईकोमोनास फीटस नमक एक परजीवी है।

लक्षण : यह गर्भावस्था के शुरुआती दिनों में भ्रूण मृत्यु का कारण बनता है जिससे मादा पशु गर्मी/मद को अनियमित समय बाद लौटता है, हालांकि कुछ प्रदर्शन सामान्य या छोटा भी होता हैं। यह रोग प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु दर, प्रारंभिक गर्भपात (2–4 महीने), गर्भाशय की सूजन और बांझपन से जुड़ा होता है।

निदानः ट्राईकोमोनियासिस का एक सकारात्मक निदान, मादा पशुओं से प्राप्त नमूनों से, गर्भस्था भ्रूण और पेट के ऊतकों से किया जाता है। नमूने का सबसे अच्छा स्रोत भ्रूण झिल्ली या एक गर्भपात हुए भ्रूण के अंगों, विशेषकर पेट है।

उपचार व रोकथाम :

- कृत्रिम गर्भाधान द्वारा मादा पशुओं को गर्भित करवाये।
- पुराने बैलों की जगह युवा नर पशुओं का उपयोग करना।
- रोग पीड़ित मादा पशुओं को 4–6 महीने के लिए प्रजनन से आराम देना।

ख. नीयोस्पोरियोसिस

कारण : निओस्पोरा कैनाइनम एक हाल ही में खोजा गया कोशिका में पाया जाने वाला, कोक्सीडियन परजीवी है। यह गर्भपात या फिर दुनिया भर में मवेशियों, भेड़, बकरी, घोड़े और हिरण में नवजात शिशुओं में नाडी तथा मासपेशियों में पक्षाघात पैदा करने के लिए जाना जाता है।

रोकथाम : इस बीमारी में भ्रूण को नुकसान, भ्रूण ममीकरण आदि विशेषता है। अधिकांश मामलों में गर्भपात गर्भ के 5–6 महीने में होता है। वर्तमान में नीयोस्पोरियासिस के लिए कोई प्रभावी उपचार नहीं है। रोकथाम के लिए, कुत्तों की पशु बाड़े या चारे तक पहुँच नहीं होनी चाहिये क्योंकि यह रोग कुत्ते द्वारा आगे फैलता है। भोजन के दूषित होने से बचाने के लिए जंगली पक्षियों, आंगतुकों और अन्य जंगली जानवरों को पशुओं के चारे तक नही पहुँचने देना चाहिए।

एफ्लाटॉक्सिन : किसानों की आर्थिक प्रगति में अवरोधक

[1]संजय कुमार भारती, [2]अनीता, [3]शालिनी अरोड़ा एवं [4]सुशांत

[1]पंडित दीन दयाल उपाध्याय पशु-चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो-अनुसन्धान संस्थान, मथुरा, उत्तर प्रदेश
[2]पशुचिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
[3]डेयरी विज्ञान और प्रौद्योगिकी कॉलेज, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा।

एफ्लाटॉक्सिन एक महत्वपूर्ण विषाक्त चयापचय (टाक्सिक मेटाबोलाइट) है जो कि चारे एवं खाद्य पदार्थो में कुछ विशेष कवकों द्वारा निर्मित होता है। यह विश्व में सबसे विदित एवं शाोध किया हुआ माईकोटॉक्सिन है। एफ्लाटॉक्सिन को पशु और पक्षियों पर हानिकारक प्रभाव डालने वाला सबसे महत्वपूर्ण विषाक्त पदार्थ में शामिल किया गया है। 1960 के दशक में ''अज्ञात'' रोग की वजह से इंग्लैंड में टर्कियो की अत्याधिक मात्रा में आक्समिक मृत्यु हुई, जिसे शाोध के बाद एफ्लाटॉक्सिन घोषित किया गया था। माइकोटॉक्सिन की उपज के लिये तीन प्रमुख प्रजातियाँ मुख्यतः एस्परजिलस, फ्यूसेरियम और पेनीसिलियम जिम्मेदार है, जिनमें से एस्परजिलस, एफ्लाटॉक्सिन का उत्पादन करने वाला मुख्य कवक है। एफ्लाटॉक्सिन को पशुओं एवं मनुष्यों में विभिन्न रोगों जैसे एफ्लाटॉक्सिकोसिस के साथ संबद्ध किया गया है। एफ्लाटॉक्सिकोसिस उच्च नमी और अधिक तापमान वाले उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों की मुख्य समस्या है। एफ्लाटॉक्सिकोसिस या फफूंदी विषाक्तता भारतवर्ष के पशुधन में भी एक मुख्य समस्या है जो न केवल पशुओं के स्वास्थ्य बल्कि किसानों के आर्थिक नुकसान के लिये भी उत्तरदायी है। अनुचित संग्रहित विषाक्त चारा एफ्लाटॉक्सिन संक्रमण का मुख्य स्त्रोत है। संक्रमित पशुओं में एफ्लाटॉक्सिन के अवशेष दूध एवं माँस में पहुँच जाते है। ज्ञात रहे कि पशु एवं पशु उत्पाद खाद्य श्रृंखला का एक अभिन्न अंग है इनके माध्यम से इन अवशेषों की मनुष्यों मे आने की सम्भावना बढ़ जाती है। एफ्लाटॉक्सिन का उत्पादन करने वाली फफूंदी भंडारण किये गये चारे एवं खाद्य पदार्थ जैसे की बिनौला खल, पशु आचार (साइलेज), मक्का, गेहूँ, जौ इत्यादि में प्रायः देखी जाती है। एफ्लाटॉक्सिन की मात्रा यदि चारे में 100 माइक्रोग्राम प्रति किलोग्राम से अधिक होती है तो इसे विषाक्तता कहा जाता है।

विकास को प्रभावित करने वाले कारकः

फफूंदी (एस्परजिलस फ्लेवस) की वृद्धि हेतु निम्न बिन्दु मुख्य रूप से सहायक है –

- आक्सीजन की उपलब्धता
- पर्याप्त नमी (15 प्रतिशत)
- आपेक्षिक आर्द्रता (90–95)
- अनुकूल तापमान (24–25 डिग्री सेल्सियस)

संरक्षित अनाज में फफूंदी लगने की सम्भावना मानसून में अधिक होती है, क्योंकि इस समय फफूंदी की वृद्धि के लिये तापमान और आर्द्रता उचित मात्रा में उपलब्ध होती है।

एफ्लाटॉक्सिन के दुष्प्रभाव :

एफ्लाटॉक्सिन विभिन्न पशुओं एवं पक्षियों में विपरीत प्रभाव प्रकट करता है। मुख्यतः इनमें यकृत रोग दूध एवं अण्डों का कम होना प्रजनन एवं जन्मजात विकारों का उत्पन्न होना शामिल है। एफ्लाटॉक्सिन से संक्रमित पशु एवं पक्षियों में उत्पादन क्षमता कम हो जाती है और ये बिमारियों के लिए अतिसंवेदनशील हो जाते है जिसकी वजह से यह किसानों को उत्पादों से होने वाली आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव ड़ालते है। आमतौर पर युवा पशुओं में एफ्लाटॉक्सिकोसिस होने की सम्भावना ज्यादा होती है। एफ्लाटॉक्सिन न केवल उत्पादन में गिरावट करता है यद्यपि यह दूध में परिवर्तन कर एफ्लाटॉक्सिन डी–1 डी–2 का उत्पादन भी करता है जिसे कैंसर उत्पन्न करने वाला पदार्थ माना गया है। एफ्लाटॉक्सिन पशुओं के विभिन्न अंगों में संचित हो जाता है तथा यह दूध एवं माँस द्वारा खाद्य श्रृंखला में शामिल होकर

मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करने के साथ–साथ हानिकारक प्रभाव जैस यकृत रोग, गुर्दे का रोग, कैंसर रोग, प्रतिरोधक क्षमता का कम होना, प्रजनन अंगों में दुष्प्रभाव, बच्चों में जन्मजात विकृति इत्यादि प्रकट कर सकता है।

एफ्लाटॉक्सिन की जाँचः

एफ्लाटॉक्सिन चौदह विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं व ये आपस में भिन्न होते हैं। एफ्लाटॉक्सिन ताप प्रतिरोधी होते है। जल में ये अधुलनशील होते हैं परन्तु वसा में ये विसर्जित हो जाते हैं। पशुओं में एफ्लाटॉक्सिन की संवेदनाशीलता का प्रायः यह क्रम देखा जाता है।

खाद्य पदार्थों में एफ्लाटॉक्सिन का निर्धारण करने के लिये पतली परत 'क्रोमेटोग्राफी' और नियंत्रण रेखा के तरीके श्रमसाहय और समय लेने वाले हैं, इन तरीकों के लिये ज्ञान और आधुनिक तकनीक के अनुभव की आवश्यकता होती है। जैव प्रौधोगिकी के द्वारा इसकी पहचान शीघ्र की जा सकती है एवं इसकी व्यावसायिक उपलब्धता भी है।

एफ्लाटॉक्सिन की रोकथाम :

एफ्लाटॉक्सिन की रोकथाम इसके सन्दूषण को कम करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारगार साधन हो सकता है। लेकिन इसके लिये कृषि भंडारण के तरीके, कटाई की परम्परा व फसल प्रबन्धन/प्रसंस्करण में अत्याधिक सुधार की जरूरत है। इसके निवारण के लिये निम्नलिखित बिन्दु महत्त्वपूर्ण है :

- पशुओं को फफूंदी लगा चारा देने से बचें।
- पशुओं का आहार बनाते समय हमेशा फफूँदी रहित अनाज का ही प्रयोग करें।
- अनाज को पशुओं के लिये आहार बनाने से पहले उसे अच्छी तरह धूप में सुखायें।
- फफूँदी लगे अचार (साइलेज) का प्रयोग ना करें।
- पशु खाद्य आहार के थैले जमीन से ऊपर व दीवार से दूरी पर रखें।
- बिनौला की खल में फफूँदी जल्दी लगती है अतः इसके प्रयोग से बचें।
- घुन लगे अनाज का प्रयोग न करें एवं पानी वाली कुण्ड को पलास्टर करायें व साफ रखें।

निष्कर्षः

एफ्लाटॉक्सिन को सामान्यतः पशु एवं पक्षियों के असामान्य स्वास्थ्य एवं निम्न उत्पादन क्षमता का मूलभूत कारण माना जाता है। इसके अलावा इससे उत्पन्न होने वाले आर्थिक नुकसान भी अहम है। घरेलू पशुओं में एफ्लाटॉक्सिन की वजह से पोषण विकास एवं प्रजनन सम्बन्धी प्रदर्शन निम्न हो जाता है। एफ्लाटॉक्सिन कुक्कुट उधोग के भारी नुकसान का भी एक कारण है। यह पक्षियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम कर उन्हें संक्रमण के लिये अत्यधिक संवेदनशील बना देता है। एफ्लाटॉक्सिन दूध, माँस, अण्डे और अन्य रूप में उपस्थित है, जो कि मानव स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है एवं चिन्ता का विषय है। दीर्घकालीन रणनीतियाँ एवं खाद्यान सुरक्षा द्वारा यह सुनिशिचित कराना आवश्यक है कि जैविक पदार्थो का विषहरण और जानवरों को सुरक्षित खाद्य सामग्री कैसे उपलब्ध कराई जाये। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इसके द्वारा उत्पन्न जोखिम एवं रोकथाम पर कानून बनाकर नियंत्रित कराने की आवश्यकता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशुओं में एनाप्लाज्मोसिस रोग तथा निवारण

स्नेहिल गुप्ता, एस.के. गुप्ता एवं सत्यवीर सिंह

पशु चिकित्सा परजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रदेश में बढ़ती आबादी, कम होती जा रही कृषि योग्य भूमि, गिरते जल स्तर, पशु उत्पादों की ज्यादा मांग के कारण किसान की निर्भरता पशुपालन तथा उससे सम्बन्धित व्यवसायों के प्रति बढ़ती जा रही है। पशुओं से सर्वाधिक उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि पशु स्वस्थ, तंदुरूस्त एवं उत्पादक स्थिति में हो। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के परजीवी रोग वर्ष भर व्यापत रहते हैं परन्तु कुछ सूक्ष्म परजीवी रोग जो किलनियों/चिचड़ियों द्वारा फैलाये जाते हैं, वर्षा ऋतु एवं ग्रीष्मकाल में अधिक बढ़ जाते हैं। ऐसा ही एक रोग एनाप्लाज्मोसिस है जो गायों/भैंसों के अलावा कई बार भेड़–बकरी में भी पाया जाता है।

यह एक रिकैट्सिया जनित परजीवी रोग है, जो मुख्यतः गौ पशुओं में होता है। गाय–भैंस में यह रोग एनाप्लाज्मा मारजीनेल नामक रिकैटिसया से होता है। भेड़–बकरी में यह रोग एनाप्लाज्मा ओविस द्वारा होता है। यह परजीवी सूक्ष्म तथा गोल पिण्ड के आकार का होता है जो मुख्यतः लाल रक्त कोशिकाओं (आर.बी.सी.) में पाया जाता है। खून की जांच के दौरान तथा सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है।

रोग का प्रसारण (फैलाव) :

इस सूक्ष्म परजीवी का संक्रमण मुख्य रूप से रक्त चूसने वाली प्रजाती की चीचड़ी (बूफिलस) द्वारा होता है। इसके अलावा (टेबेनस तथा स्टोमोकसीस) विशेष प्रकार की मक्खियों के काटने से भी यह रोग पशुओं में फैलता है। कभी–कभी सींग रोधन, बंधियाकरण, टीकाकरण, रक्तश्राव या शल्यचिकित्सा द्वारा भी यांत्रिक रूप से यह रोग फैल सकता है।

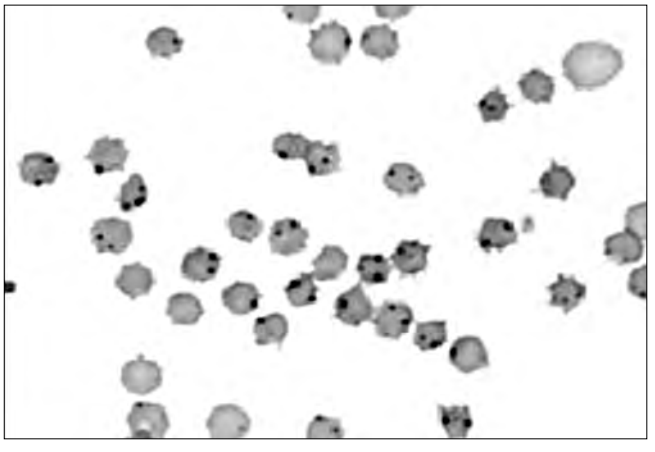

लक्षण :

यह रोग वर्षा ऋतु के बाद मुख्यतः देखने में आता है। इस रोग के लक्षण परजीवी संक्रमण के 15–25 दिन पश्चात उत्पन्न होते हैं। रोगग्रस्त पशु को तेज ज्वर हाता है जिसमें उसका तापमान 103–105° f तक पहुँच जाता है।

दुधारू पशुओं में दुग्ध उत्पादन क्षमता में तेजी से गिरावट आ जाती है। पशु खाना कम कर देता है। रक्तालापता के कारण पशु सुस्त तथा कमजोर हो जाता है। श्वसन में कठिनाई के साथ–साथ हृदयगति तीव्र हो जाती है। उचित उपचार के अभाव में पशु की मृत्यु तक हो जाती है।

निदान :

एनाप्लाज्मोसिस रोग का सर्वप्रथम निदान प्रमुख लक्षणों जैसे रक्तालापता, पीलिया, भूख कम लगना, उच्च शारीरिक तापक्रम के आधार पर किया जाता है, लेकिन इस रोग की पहचान रक्त में परजीवियों की पहचान के आधार पर की जाती है।

एनाप्लाज्मा मारजीनेल गोलपिण्ड आकार का होता है जो लाल रक्त कोशिकाओं के ऊपरी भाग में पाया जाता है।

उपचार :

इस रोग के उपचार के लिए ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन या क्लोरटेट्रासाइक्लीन 10 मि.ग्रा. प्रति किग्रा. शारीरिक भार के अनुसार अंतः शिरा मार्ग द्वारा देना चाहिए।

चमड़ी में बचाव :

क्योंकि चिचड़ियां व विशेष प्रकार की मक्खियाँ इस रोग को फैलाती है, अतः पशु को इनसे बचाना चाहिए। इसके लिए पशु घर की सफाई, पशुघर का छिद्र रहित होना, पशुघर में जाली लगे दरवाजे व खिड़कियाँ होनी चाहिये। चिचड़ियों के इलाज के लिए कीटनाशक दवाइयों का पशु व पशुघर में पशुचिकित्सक की सलाह पर स्प्रे करें।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

शुरूआती दिनों में बछड़े का खान पान

[1] सोनू एवं [2] स्नेह लता चौहान

[1]पशु पोषण विभाग एवं [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

जन्म लेते ही शुरूआती देखभाल

जन्म के बाद बछड़े के नाक और मुँह से कफ या श्लेष्मा को साफ करें। आमतौर पर गाय बछड़े को जन्म देते ही जीभ से चाटने लग जाती है इससे बछड़े के शरीर को सूखने में आसानी मिलती है और श्वसन तथा रक्त संचार सुचारू रूप से होता है। कई बार गाय ऐसा नहीं करती तो ऐसी स्थिति में बछड़े को कपड़े से सुखाकर उसकी छाती को हाथ में दबाकर कृत्रिम श्वसन प्रदान करें। नाभ नाल में शरीर से 2 से 5 से.मी. की दूरी पर गाँठ बाँध देनी चाहिए तथा बंधे हुए स्थान से 1 से.मी. नीचे काटकर बोरिक एसिड या टिंक्चर आयोडीन अथवा कोई भी एंटीबायोटिक लगा देनी चाहिए। बछड़े के बांधने के स्थान को बिल्कुल सूखा और साफ रखना चाहिए। बछड़े के वजन का ब्यौरा लेना चाहिए। गाय के थन और स्तन नाग्र को क्लोरीन के घोल द्वारा अच्छी तरह साफ कर सूखा लें और बछड़े को माँ का पहला दूध अथवा खीस प्रदान करें। एक घंटे में बछड़ा अपने आप दूध पीना शुरू कर देता है अगर ऐसा न करे तो कमजोर बछड़े की दूध पीने में मदद करें।

बछड़े का भोजन

नवजात बछड़े को दिया जाने वाला सबसे पहला और सबसे जरूरी आहार है माँ का दूध अर्थात खीस। खीस बछड़े के जन्म से 3 से 7 दिन तक होता है और यह बछड़े के पोषण और तरल पदार्थ का प्राथमिक श्रोत होता है। यह बछड़े को आवश्यक प्रतिपिंड भी उपलब्ध करवाता है और उसे संक्रामक रोगों ओर पोषण सम्बन्धी कमियों को सामना करने की क्षमता देता है। यदि खीस उपलब्ध हो तो जन्म के बाद 3 दिन तक उसे लगातार खीस देना चाहिए। जन्म के बाद बछड़े को खीस के अतिरिक्त 3 से 4 सप्ताह तक माँ के दूध की जरूरत होती है। उसके बाद बछड़ा वनस्पति से प्राप्त मांड और शर्करा को पचाने में सक्षम होता है। इसके बाद भी बछड़े को दूध पिलाना पोषण की दृष्टि से अच्छा होता है पर यह अनाज खिलाने की तुलना में मंहगा होता है। बछड़े को दिए जाने वाले हर एक द्रव्य आहार का तापमान लगभग कमरे के तापमान या शरीर के तापमान के बराबर होना चाहिए। बछड़े को खिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाले बर्तनों को अच्छी तरह से साफ रखें और खिलाने में इस्तेमाल होने वाली अन्य वस्तुओं को साफ और सूखे स्थान पर रखें।

पानी

पानी बछड़े के प्रथम अमाशय के विकास में आवश्यक भूमिका निभाता है। दूध से अलग पानी देने से सूखे भोजन के सेवन से बढ़कर वजन बढ़ेगा। स्वस्थ बछड़ों को बढ़ाने के लिए पानी आवश्यक है। यह सुनिश्चित करें कि आपके भविष्य के झुंड की सबसे अच्छी वृद्धि और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए प्रारंभिक आयु में स्वच्छ और ताजा पानी हमेशा उपलब्ध रहे।

खिलाने की व्यवस्था

बछड़े को खिलाने की व्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि उसे किस प्रकार का भोज्य पदार्थ दिया जा रहा है। इसके लिए मुख्यतः निम्नलिखित व्यवस्था अपनाई जाती हैं :

- बछड़े को पूरी तरह दूध पर पालना
- मक्खन निकला हुआ दूध देना
- दूध के अतिरिक्त अन्य द्रव पदार्थ जैसे की दही का मीठा पानी, छाछ, दलिया इत्यादि देना।
- दूध के विकल्प देना
- काफ स्टार्टर देना

- पोषक गाय का दूध पिलाना

पूरी तरह दूध पर पालना

50 किलो औसत शारीरिक वजन के 3 महीने की उम्र तक के नवजात बछड़े की पोषण आवश्यकता इस प्रकार हैः

सूखा पदार्थ (डी.एम.)	1.43 किलो
पचने योग्य कुल पोषक पदार्थ (टी.डी.एन.)	1.60 किलो
कच्चे प्रोटीन	315 ग्राम

यह ध्यान देने योग्य है कि टीडीएन की आवश्यकता डीएम से अधिक होती है क्योंकि भोजन में वसा का उच्च अनुपात होना चाहिए। 15 दिन बाद बछड़ा घास खाना शुरू कर देता है जिसकी मात्रा लगभग आधा किलो प्रतिदिन होती है जो की 3 महीने बाद बढ़कर 5 किलो हो जाती है। इस दौरान हरे चारे के स्थान पर 1–2 किलो अच्छे प्रकार का सूखा चारा बछड़े का आहार रखना चाहिए जो की 15 दिन की उम्र में आधा किलो से लेकर 3 महीने की उम्र में डेढ़ किलो तक दिया जा सकता है। 3 सप्ताह के बाद यदि पूर्ण दूध की उपलब्धता कम हो तो मक्खन निकला हुआ दूध, छाछ अथवा अन्य दुग्धिये तरल पदार्थ देने चाहिए।

बछड़े को दिया जाने वाला मिश्रित आहार

बछड़े का मिश्रित आहार एक सांद्र पूरक आहार है जो ऐसे बछड़े का दिया जाता है जिसे दूध या अन्य तरल पदार्थ पर पाला जा रहा हो। यह आहार मुख्य रूप से मक्के और जई जैसे अनाजों से बना होता है। जौ, गेहूं और ज्वार जैसे अनाजों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस मिश्रित आहार में 10 प्रतिशत तक गुड़ का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। एक आदर्श मिश्रित आहर में 80 प्रतिशत टीडीएन 22 प्रतिशत सीपी होता है।

नवजात बछड़े के लिए रेशेदार पदार्थ

अच्छे किस्म के तना युक्त सूखे दलहनी पौधे बछड़े के लिए रेशे का अच्छा श्रोत है। दलहन घास और पुआल का मिश्रण भी उपयुक्त होता है। धूप लगाई हुई घास जिसकी हरियाली बरकरार हो, विटामिन ए, डी तथा बी काम्प्लेक्स का अच्छा स्त्रोत होती है। 6 महीने की उम्र में बछड़ा 1.5 से 2.5 किलोग्राम तक सुखी घास खा सकता है उम्र बढ़ने के साथ–साथ यह मात्रा बढ़ती जाती है। 6–8 सप्ताह के बाद साइलेज अतिरिक्त रूप से दिया जा सकता है अधिक छोटी उम्र में साइलेज खिलाना बछड़े में दस्त का कारण बन सकता है। 4 से 6 महीने की उम्र तक साइलेज रेशे के स्त्रोत के रूप में उपयुक्त नहीं मानते। मक्के और ज्वार के साइलेज में प्रोटीन और कैल्शियम पर्याप्त नहीं होते तथा उनमें विटामिन डी की मात्रा भी कम होती है।

पोषक गाय के दूध पर बछड़े का पालना

2 से 4 अनाथ बछड़ो को दूध पिलाने के लिए उनकी उम्र के पहले सप्ताह से ही कम वसा युक्त दुध देने वाली और दुहने में मुश्किल करने वाली गाय को सफलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। सूखी घास के साथ बछड़े को सूखा आहार जितनी कम उम्र में देना शुरू किया जाए उतना ही अच्छा है ताकि इन बछड़ों का 2 से 3 महीने की उम्र में दूध छुड़वाया जा सके।

बछड़े को दलिये पर पालना

बछड़े के आरम्भिक आहार का तरल रूप है दलिया पर यह दूध का विकल्प नहीं है। चार सप्ताह की उम्र से बछड़े के लिए दूध की मात्रा धीरे धीरे कम कर भोजन के रूप में दलिये को शामिल किया जा सकता है और 20 दिन बाद दूध को पूरी तरह से बंद किया जा सकता है।

काफ स्टार्टर पर बछड़े को पालना

इसमें बछड़े को पूर्ण दूध के साथ स्टार्टर दिया जाता है। सूखा काफ स्टार्टर और अच्छी सूखी घास या चारा खाने की आदत लगाई जाती है। 7 से 10 सप्ताह की उम्र में बछड़े का दूध पूरी तरह छुड़वा दिया जाता है।

दूध के विकल्पों पर बछड़े को पालना

यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि नवजात बछड़े के लिए पौषकीय महत्व की दृष्टि से दूध का कोई विकल्प नहीं है। हालाँकि दूध के विकल्प का सहारा उस स्थिति में लिया जा सकता है जब दूध अथवा अन्य तरल पदार्थ बिल्कुल उपलब्ध ना हो। दूध के विकल्प ठीक उसी मात्रा में दिए जाते हैं जिस मात्रा में पूर्ण दूध दिया जाता है, अर्थात पुनर्गठन के बाद बछड़े के शारीरिक वजन का 10 प्रतिशत पुनर्गठित दूध के विकल्प में कुल ठोस मात्रा में तरल पदार्थ

के 10 से 12 प्रतिशत तक होती है।

दूध छुड़वाने के बाद का भोजन

दूध छुड़वाने के बाद 3 महीने तक काफ स्टार्टर की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए तथा सारा दिन अच्छी किस्म की घास देनी चाहिए। बछड़े के वजन के 3 प्रतिशत तक उच्च नमी वाले आहार जैसे साईलेज, हरा चारा और चराई के रूप में घास खिलानी चाहिए। बछड़ा इनको अधिक मात्रा में न खा ले इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए अन्यथा कुल पोषण की प्राप्ति सीमित हो सकती है।

निष्कर्ष

नवजात बछड़ों को बीमारी से बचाने के लिए सम्पूर्ण आहार का अत्यधिक महत्व है। बछड़े का नियमित निरीक्षण करें तथा उन्हें ठीक तरह से खिलाए। साफ सफाई के साथ बछड़ों को शुरूआती दिनों में दूध और संतुलित आहार देना चाहिए ताकि उनकी व्यस्क आयु अच्छी हो तथा वो ताउम्र रोग मुक्त रहें।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

भेड़ बकरियों के चयन की विधि तथा विभिन्न अवस्थाओं हेतु आहार बनाना

[1]सोनू एवं [2]स्नेह लता चौहान

[1]पशु पोषण विभाग एवं [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

भेड़ व बकरी पालन का व्यवसाय समाज के भूमिहीन, बेरोजगार नवयुवकों के लिए आमदनी का एक अच्छा साधन है क्योंकि इस व्यवसाय में लागत कम और आमदनी अधिक है। भेड़ व बकरियों के लिए चरागाह का होना अत्यंत आवश्यक है। भेड़ बकरियाँ रोमांसिक पशु वर्ग में आती हैं जिसके तहत पशु मोटे चारे से ऊर्जा प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। बकरियों के चरने की विधि को ''ब्राउजिंग'' कहते हैं क्योंकि बकरियाँ धरती से थोड़ा ऊपर की वनस्पति तथा पेड़ के पत्तों को खाना अधिक पसंद करती हैं। भेड़ों के चरने की विधि को ''ग्रेजिंग'' जिसकी वजह से ये छोटी घास को भी खा सकती हैं।

पशुओं के चयन की विधियां –

क. प्रारूप अथवा बाह्य रचना

ख. स्वयं तथा सम्बन्धियों की उत्पादन क्षमता

ग. संतति परीक्षण

घ. वंशावली

क. प्रारूप अथवा बाह्य रचना

यह पशुओं के चुनने की परम्परागत रीति है जिसमें एक नर आधे रेवड़ के बराबर होता है क्योंकि निकृष्ट नर रेवड़ के गुणों की गिरावट का कारण होता है। इसके विपरीत एक पूर्ण सक्षम नर अनुवांशिकीय वृद्धि की योग्यता रखता है। चयन करते समय पशुओं के शरीर के विभिन्न अंगों का ज्ञान अनिवार्य है।

नरों का चयन

जो नर प्रजनन के लिए रखना हो वह आकर्षक, स्वस्थ, प्रभावशाली, उत्तेजक, उपजाऊ और मर्दाने डील डोल होना चाहिए। नर की गर्दन ऊँची हो तथा सभी नस्लीय नस्लों से संपन्न होना चाहिए।

मादाओं का चयन

लगातार प्रजनन और जुड़वाँ मेमने या छाग देने वाली हो। मादा अच्छा दूध पिलाने वाली हो ताकि मेमनों का वजन छः महीने पर अच्छा हो तथा दीर्घ प्रजनन आयु वाली हो।

विभिन्न शरीर अंगों का ब्योरेवार वर्णन–

आंख व कान : बड़ी चमकीली एवं नम आंखे पशु के स्वस्थ होने का प्रमाण होती है।

सिर : चौड़ा कपोल व थूथुन होना चाहिए तथा दृढ़ जबड़ा, जो की पशु के चरने की क्षमता को प्रकट करता है।

गर्दन व कंधे : लंबी एवं मजबूत गर्दन तथा मजबूत कंधे होने चाहिए। कंधे, रीड की हड्डी के समान्तर होने चाहिए।

पीठ तथा कमर : मजबूत और सीधी पीठ शरीर के अंगों की उत्तम रचना दर्शाती है। पीठ व कमर समतल हो और यदि पीठ में झुकाव हो तो यह शारीरिक दोष माना जाता है।

काठी : भरे हुए चौड़े पुट्ठों वाला पशु अधिक मांस वाला होगा और यह उत्पादन भी अच्छा करेगा।

वक्ष : छोड़ा व भरा हुआ वक्ष अधिक उत्पादन में सहायक होता है।

पेट : गहरा और चौड़ा पेट अधिक भोजन ग्रहण करने की क्षमता दर्शाता है। पसलियां पेट को गोल आकार देती हैं जबकि चपटी पसलियों वाले पशु को ''पेटु आकार'' दोष वाला माना जाता है।

पांव व टाँगे : पशु अपने चारों पांव पर सामान रूप से खड़ा होना चाहिए तथा नर के आगे के व मादा के पीछे के पैर मजबूत होने चाहिए।

अयन : बड़ा अयन अधिक क्षमता का प्रदर्शन करता है। अयन का मुलायम तथा गांठ रहित होना पशुओं के स्वस्थ होने का प्रतीक है। अयन पर समान लम्बाई वाले थन हो तथा दोनों थनों के रन्ध खुले हुए होने चाहिए।

त्वचा व ऊन : त्वचा मुलायम व ढीली हो पर शुष्क न हो। भेड़ के शरीर पर ऊन की चमक विशिष्ट हो।

शरीर की लम्बाई : अधिक लम्बाई अधिकतम उत्पादन को दर्शाती है क्योंकि बड़े आकार के पशु की चारा दाना खाने की क्षमता अधिक होगी और उनकी शारीरिक वृद्धि जल्दी होगी।

ऊपर दी गई बातों के अतिरिक्त चयन के समय पशु प्रजनन को पशु के नस्लीय गुणों की सत्यता, स्वस्थता, उम्र, ब्यांत संख्या आदि की जानकारी रखना आवश्यक है।

ख. स्वयं तथा सम्बन्धियों की उत्पादन क्षमता

सम्बन्धियों का प्रदर्शन विशेषतः तब देखते हैं जब वर्गीकरण किये जाने पशुओं के बारे में सूचना उपलब्ध न हो क्योंकि नजदीकी संबंधी ही उपयोगी होंगे ना कि दूर के संबंधी।

ग. संतति परीक्षण

प्रजनन हेतु नरों का चयन करने की यह सर्वोत्तम विधि है और इसके लाभ भी बहुत ज्यादा हैं इसलिए प्रायः इस विधि को उपयोग करना चाहिए।

घ. वंशावली

वंशावली के आधार पर चयन करने से आनुवंशिक दोषों का भी पता लगाया जा सकता है। इसके आधार पर वही नर चुने जो ऐसी मादाओं से पैदा हुए हो जिनकी वंशावली अधिक मांस उत्पादन करने में प्रसिद्ध हो तथा साथ–साथ मादा की स्वयं की शारीरिक वृद्धि भी उत्तम होनी चाहिये।

उपरोक्त चारों विधियां अलग–अलग भी प्रयोग कर सकते हैं पर इन चारों को मिलाकर उपयोग करना सबसे उत्तम है।

भेड़ बकरियों में आहार की आवश्यकता निर्वाह तथा उत्पादन हेतु होती है। पशु के आहार ग्रहाण का एक भाग स्वस्थ शरीर पर खर्च हाता है जिसे निर्वाह आहार कहते हैं। गाय भैंस के मुकाबले में भेड़ बकरियों का प्रति शरीर इकाई ज्यादा होता है क्योंकि इनको प्रतिदिन चराई के लिए आठ से दस किलोमीटर चलना पड़ता है। जीवन निर्वाह के लिए प्रति 100 किलोग्राम शरीर भार के लिए 1 किलोग्राम पाच्य पोषक तत्व एवं 45 से 65 ग्राम प्रोटीन की जरूरत होती है। जीवन निर्वाह हेतु पोषक तत्वों की आवश्यकता के अतिरिक्त शरीर वृद्धि, उत्पादन या कार्य हेतु जितने पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है वह उत्पादन आहार कहलाता है। दूध वाली भेड़ बकरियों को शरीर निर्वाह हेतु पोषक तत्वों के आलावा

दूध उत्पादन के लिए भी पोषक तत्व उपलब्ध करवाना है। दूध उत्पादन के लिए ऊर्जा, प्रोटीन, कैल्शियम तथा फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है, इस दौरान बरसीम तथा लूसर्न जैसे फलीदार हरे चारे और गेहूँ का चोकर अवश्य देना चाहिए। दूध उत्पादन के अतिरिक्त शरीर वृद्धि हेतु भी प्रोटीन तथा ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

भेड़ बकरियों को आहार देने के कुछ मूल नियम निम्नलिखित हैं–

- भेड़ बकरियों को 8–9 घंटे की चराई के आलावा कुछ दाना भी देना जरूरी होता है।
- चारे का प्रकार एकदम से नहीं बदलना चाहिए।
- दाना पहले खिलने के बाद ही सूखा तथा हरा देना चाहिए। आहार में सूखे चारे, हरे चारे एवं दाना मिश्रण का समावेश होना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में पशु को मिल सके।
- आहार में नमक तथा खनिज मिश्रण अवश्य सम्मिलित करना चाहिए। नमक देने से बदहजमी की शिकायत नहीं होती व आहार स्वादिष्ट बन जाता है। खनिज मिश्रण शरीर की कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा अन्य खनिज तत्वों की कमी को पूरा करता है।

विभिन्न आयुवर्ग के पशुओं का आहार बनाना :–

चराई से भेड़ बकरियों को आहार मिलता है परन्तु इन चरागाहों से संतुलित आहार नहीं मिलता। भेड़ बकरियों का लाभकारी उत्पादन करने के लिए तथा उनका स्वास्थ्य ठीक बनाये रखने के लिए संतुलित आहार उपलब्ध करवाना बहुत जरूरी है। अतः विभिन्न पोषक तत्वों का समावेश एवं सस्ते आहार तत्वों का चयन करके आहार को सम्पूर्ण बनाना चाहिए। आयु अनुसार भेड़ बकरियों के आहार की व्यवस्था इस प्रकार है–

मेमनो का आहार–

पैदा होने के 1–2 घण्टे के अंदर खीस पिलाना सबसे जरूरी होता है क्योंकि खीस में जीवाणु रोधक तत्व अत्यधिक मात्रा में होते हैं जो मेमनों तथा लैलों को बीमारी से बचाते हैं। खीस बच्चों के पेट से मल बाहर निकालने में भी सहायक होता है। पहले तीन दिन तक नवजात को दिन में तीन बार खीस अवश्य पिलानी चाहिए। दो सप्ताह तक मेमनों या लैलों को 250 ग्राम प्रतिदिन दूध पिलाना चाहिए। दो सप्ताह के बाद चारा तथा दाना देना शुरू कर देना चाहिए। दाना मिश्रण बनाने में मक्का के 30 भाग, जेहुँ की चोकर के 27 भाग, मूंगफली की खल के 40 भाग तथा खनिज लवण के 3 भाग प्रयोग कर सकते हैं। चारे में लूसर्न, बरसीम, लोबिया व पेड़ों के पत्ते दे सकते हैं। तीन महीने बाद मेमनों को पेट भर हरा चारा देना चाहिए। यदि बरसीम, रिजका, लोबिया इत्यादि हर चारे के रूप में उपलब्ध हो तो 100 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। अगर मक्का या जई हरे चारे के रूप में हो तो दाने की मात्रा 250 ग्राम कर देनी चाहिए।

एक वर्ष के मेमनों की आहार व्यवस्था

सात से आठ घंटे की चराई के साथ–साथ 250 ग्राम दाना भी देना आवश्यक है। शाम को बरसीम ''हे'', चने या ग्वार का चारा डालना चाहिए ताकि 15 माह की आयु तक नर वयस्क तथा मादा गर्भधारण करने के लायक वजन प्राप्त कर लें।

गाभिन भेड़ बकरी की आहार व्यवस्था

गर्भवस्था में जीवन निर्वाह के अतिरिक्त गर्भ में बच्चे के पोषण तत्वों की आवश्यकता होती है। इस सकतय अधिक ऊर्जावान आहार जैसे जौ, मक्की तथा जई उपलब्ध करवाना चाहिए। ब्याने के कुछ दिन पहले खाने में दाने की मात्रा कम कर देनी चाहिए। ब्याने के बाद हल्का और दस्तावर दाना व चारा देना चाहिए। कुछ दिनों बाद दाने की मात्रा धीरे–धीरे करके बढ़ानी चाहिए।

दुधारू भेड़ बकरी का आहार

दुधारू पशुओं को उत्पादन तथा निर्वाह आहार देना चाहिए क्योंकि आहार पर ही दुधारू पशु का दूध उत्पादन निर्भर करता है। दूध उत्पादन पर ही नवजात का स्वास्थ्य एवं वृद्धि निर्भर करती है।

निष्कर्ष

भेड़ बकरियों का सही चयन करके युवा मांस उत्पादन क्षमता को बढ़ा सकते हैं। सही चयन के साथ–साथ खान पान का भी विशेष ध्यान देना चाहिए। सही चारे एव ंदाने का प्रयोग करके भेड़ बकरियों को रोगमुक्त रख सकते हैं जिससे भेड़ बकरी पालन अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

पशु आहार संयंत्र के विभिन्न भाग एवं संयंत्र का प्रचलन व रख रखाव

[1]सोनू एवं [2]स्नेह लता चौहान

[1]पशु पोषण विभाग एवं [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

हमारे देश में पशुओं की संख्या दुनिया में सबसे अधिक होने के बावजूद भी दूध उत्पादन बहुत पीछे हैं। इसका कारण यह है कि देश में दूध उत्पादन किसानों का मुख्य व्यवसाय होने की बजाय कृषि व्यवसाय का एक उपपुरक व्यवसाय ही है और पशुओं को अधिकतर समय कृषि आधारित उद्योग के उत्तोत्पाद व सूखे चारे पर ही निर्भर रहना पड़ता है। पशुओं को वैज्ञानिक विधि से ना खिलाने की वजह से उत्पादन कम रहता है।

गुजरात राज्य में स्थित कृषि सहकारी संस्था की सफलता के आधार पर डेयरी विकास के लिए बनाई गई राष्ट्रीय प्रणाली ने देश भर में संतुलित पशु आहार बनाने के कार्यक्रम को काफी प्रोत्साहित किया है, इसीलिए इस अध्याय में हमने उन सभी किसानों की सहायता करने का प्रयास किया है जो संयोजित पशु आहार संयंत्र के भागों के बारे में जानना चाहते हैं। पशु आहार फैक्ट्री परिसर में निर्माण विभाग में सभी मशीनें जैसे की कच्चे माल का गोदाम, तैयार माल का गोदाम, गुणवत्त संरक्षण प्रयोगशाला एवं प्रशासनिक विभाग शामिल होते हैं। इसके अलावा संयंत्र परिसर में अन्य आवश्यक सुविधाएं जैसे पानी, बिजली तथा कार्यालय आदि भी होते हैं। संयोजित पशु आहार संयंत्र के प्रमुख भाग इस प्रकार हैं–

क. अंतर्ग्रहण भाग

ख. पिसाई भाग

ग. बैच मिश्रण भाग

घ. शीरा मिश्रण विभाग

ड़ गोली बनाने वाला भाग

च. बोरी भरने वाला भाग

छ. चूषण भाग

ज. सहायक भाग

क. अंतर्ग्रहण भाग

शीरे या अन्य कच्चे पदार्थों का संग्रहण टैंक अथवा गोदाम में किया जाता है। कच्चे माल को आवश्यकतानुसार गोदाम से निकालकर पिसाई भाग में ले जाया जाता है फिर इसको ट्रॉली या पट्टे द्वारा ले जा सकता है।

ख. पिसाई भाग

कच्चे माल के विभिन्न पदार्थों का मिश्रण बनाने के लिए उनकी पड़ती अन्यथा मिश्रण समरूप नहीं बन पाता है। पिसाई विभाग में मुख्यतया हिलने वाली फीडर, पिसाई चक्की और चूषण वायवीय प्रणाली शामिल होते हैं। पिसाई चक्कियों में मुख्यतया आटा चक्की, रोलर मील और हैमर मील का उपयोग होता है परन्तु आमतौर पर हैमर मील का ही प्रयोग किया जाता है। हैमर मील के अंदर लोहे की आयताकार छड़े लगी होती है जिनसे टकराने पर दाने या खली आदि मोटे पदार्थों के छोटे–छोटे टुकड़े हो जाते है जो नीचे लगी जाली से बाहर निकल जाते हैं। मोटी या पतली पिसाई, जाली के छिद्रों की मोटाई पर निर्भर करती है। मोटे पदार्थ की पिसाई करने के लिए उनको हिलने वाले फीडर में डाल दिया जाता है जहाँ से वो चुंबक के ऊपर से गुजरते हुए हैमर मील में चले जाते हैं। फिर यहाँ से पीसा हुआ माल चूषण वायवीय प्रणाली द्वारा संग्रहण टैंक में भर दिया जाता है।

ग. बैच मिश्रण भाग

गुण नियंत्रण अधिकारी जो की मुख्यतया पशु पोषण अधिकारी ही होता है, विभिनन खाद्य पदार्थों की उपलब्धता एवं कीमत को ध्यान में रखते हुए पशु की पोषण आवश्यकता के अनुसार वैज्ञानिक तरीके से फॉर्मूला बनाकर निर्माण विभाग के अधिकारी को दे देता है। उस फॉर्मूले के आधार पर ही विभिन्न पीसे हुए पदार्थों को तोलकर बैच

मिश्रण विभाग में मिलाया जाता है। बैच विभाग के अंतर्गत मुख्यतः विसर्जक बिन, तुला, माल ढोने वाली चैन, उत्थापक और मिश्रण आदि शामिल हैं। गुण नियंत्रक विभाग द्वारा दिए गए के द्वारा और फिर उत्थापन मशीन के फॉर्मूले के आधार पर एक मिट्रिक टन फीड के लिए विभिन्न पड़से हुए पदार्थों को बैच तुला पर टोल लिया जाता है। वहां से माल ढोने वाली चैन के द्वारा और फिर उत्थापन मशीन के द्वारा बैच मिश्रक मशीन में ले जाते हैं। बैच मिश्रक मशीन सारा बैच पांच से दस मिनट में पूरी तरह से मिश्रित किया जाता है।

घ. शीरा मिश्रण विभाग

शीरा मिश्रक मशीन में बैच मिश्रण द्वारा मिश्रित किया हुआ माल आता है। यहाँ पर शीरे की पूर्व निर्धारित मात्रा शीरा टैंक से शीरा मिश्रक मशीन में डाल दी जाती है और फिर मशीन में 5 से 10 मिनट तक मिश्रित किया जाता है। यहाँ से शीरा मिश्रित होने के बाद यदि फीड मिश्रण के रूप में ही रखना है तो वह शीरा मिश्रण मशीन से बोरियों में भर दिया जाता है। अगर गोलीदार फीड चाहिए तो इसी मिश्रण को पैलेट मील के ऊपर लगे संग्रहण बिन में ले जाया जाता है जहाँ से वह पैलेट मील की अक्षमता के अनुसार बैच पैलेट मील में चला जाता है।

ङ. गोली बनाने वाला विभाग या पैलेट विभाग

फीड मिश्रण शीरा विभाग में शीरा के साथ मिश्रण के पश्चात फीड को शीरा मिश्रण विभाग में ले जाता है। पैलेट भाग में मुख्यतया पैलेट मील, पैलेट कूलर तथा पैलेट जाली आदि शामिल होते हैं। शीरा मिश्रित फीड पैलेट मील के ऊपर लगे संग्रहण बिन से पैलेट अनुकूलक में आता है जहाँ पर उसके साथ 1 से 1.2 किलोग्राम प्रति से.मि. दबाव के साथ भाप मिला दी जाती है। भाप मिश्रित फीड फिर पैलेट मील में चला जाता है। फीड मिश्रण पैलेट मील से निष्कासन विधि द्वारा गोलीदार रूप में बाहर आता है। गोलियों की लम्बाई व आकार कई बातों पर निर्भर करता है जैसे की फीड मिश्रण में नमी की मात्रा, पैलेट मील में लगी जाली के छेदों का आकार इत्यादि। क्योंकि पैलेट मील से गोलियाँ निष्कासन विधि से बाहर आती है इसलिए वो काफी गरम होती है और यदि वो ऐसे ही बोरियों में भर दी जाएँ तो खराब हो सकती है इसलिए उन्हें पहले ठंडा होने दिया जाता है। पैलेट फीड को ठंडा करने के बाद उसको हिलती हुई जाली के ऊपर से गुजरा जाता है ताकि यदि अगर उनमें कोई चुरा आदि हो तो उसे अलग किया जा सके। जाली से गुजरने के बाद पैलेट को बोरियों में भर दिया जाता है और चूरे को दोबारा से पैलेट बनाने के लिए मील में डाल दिया जाता है।

च. बोरी भरने वाला भाग

इस विभाग में तैयार माल को बोरियों में भरना, बोरियों की सिलाई करना व इन बोरियों को गोदाम में रखना आदि कार्य सम्मिलित होते हैं। बोरियां भरने का काम अर्धस्वचालित होता है। बोरियों को हाथ से फीड निकाली मशीन के मुँह पर रख दिया जाता है और बोरियों में एक निश्चित मात्रा का पैलेट फीड भरने के बाद उन्हें ढोने वाली चैन पर रख दिया जाता है जो उनको गोदाम तक ले जाती है। चैन के रास्ते में ही स्वचालित सिलाई मशीन होती है जो की बोरियों के मुँह को सिल देती है।

छ. चूषण भाग

फीड प्लांट के विभिन्न भागों में धूल आदि आ जाती है इस धूल को साफ करने के लिए एक चूषन संयंत्र भी लगाया जाता है। चूषन विधि द्वारा फीड प्लांट के अलग भागों में हवा का तेज या कम बहाव किया जाता है। हवा के साथ यह धूल बह जाती है और फिर हवा व धूल को अलग कर दिया जाता है।

ज. सहायक भाग

यह भाग बिजली, पानी, हवा, भाप एवं शीरा आदि की सप्लाई को जरूरत के हिसाब से उचित समय पर सही मात्रा में उपलब्ध करवाता है।

आहार संयंत्र का रख रखाव

पशु आहार संयंत्र का काम काज सही ढंग से चलने के लिए सभी मशीनों का रख रखाव करने से ही फीड प्लांट की पूरी क्षमता को उपयेाग में ला सकते हैं और सही मशीन में बनने वाला आहार भी शुद्ध होता है। इस संयंत्र में काम आने वाली मशीनों का रख रखाव इस प्रकार है–

- माल ढोने वाली चैन पट्टे व बालटीदार चैन को चलने से पहले खाली कर लेना चाहिए क्योंकि भरी

हुई चलाने से पेंच, बैरिंग या मोटर में खराबी आने का खतरा रह सकता है।

- यदि चैन का पट्टा मशीन के किसी भाग से रगड़ता हो तो उसे तुरंत बंद कर देना चाहिए नही तो मोटर पर अधिक भार पड़ता है और चिंगारी आदि से आग लगने का खतरा रहता है।
- छः महीने में एक बार पेंच व चैन आदि को मशीन के ढांचे के साथ फाँसला माप कर उसे सही करना चाहिए।
- साल में एक बार पेंच, पेड या पैन आदि का कोई हिस्सा अगर टूट फूट गया हो तो उसे बदल देना चाहिए।

उत्पादक/एलीवेटर

- यदि उत्पादक फीड से भरा हो तो उसे नहीं चलाना चाहिए। ऐसा करने से टूटने का खतरा रहता है तो चलाने से पहले यह जरूरी है की इसे खाली कर लें।
- सप्ताह में एक बार चैन व बैरिंग आदि में ग्रीस देना चाहिए तथा पेंच या चैन आदि को चैक कर लेना चाहिए।
- महीने में एक बार शीरा मापक यंत्र को पानी के तेज बहाव साफ करना चाहिए और जांच करनी चाहिए की वह ठीक मापता है या नहीं।

बैच मिश्रक

भरे हुए बैच मिश्रक को हीं चलना चाहिए इसलिए चलने से पहले उसे खाली करना जरूरी है। महीने में एक बार ग्रीस देना चाहिए।

पैलेट मील

- अगर पैलेट मील में ज्यादा समय तक फीड न बनाना हो तो उसे चावल की पोलिश से भर देना चाहिए ताकि उसे जंग आदि विकृति से बचाया जा सके।
- यदि मील के अंदर फीड फंसा हो तो उसे नहीं चलना चाहिए चलने से पहले उसमें फंसे हुए फीड को निकाल देना चाहिए ताकि रोलरों को हाथ के साथ घुमाया जा सके।
- मशीन में फीड तभी डालना चाहिए जब मशीन के रोलर पूरे चक्र के साथ घूमने लगे और मशीन रोकने से पहले यह जाँच लें की मशीन के अंदर मिश्रण समाप्त हो गया है या नहीं क्योंकि मिश्रण समाप्त होने के बाद ही मशीन को बंद करना चाहिए।
- पेंच, बैरिंग, रोलर इत्यादि की समय समय पर जाँच करते रहना चाहिए और अगर जरूरत हो तो बदल देना चाहिए। बैरिंग में हर सप्ताह ग्रीस दें

मोटरें

- मोटर को कभी भी 360 वोल्ट से नीचे एवं 450 वोल्ट से ऊपर न चलाए।
- अगर मोटर 25 हॉर्सपावर से ऊपर की है तो उसके तीनों पक्ष के तारों में बिजली का प्रवाह माप लेना चाहिए यदि परवाह में 5 प्रतिशत की परिवर्तिता है तो ठीक कर लेना चाहिए।

निष्कर्ष

हमारे देश में पशुओं को परम्परागत तरीके से खिलाया जा रहा आहार संतुलित नहीं होता तथा उसमें किसी तत्व की कमी या किसी तत्व की अधिकता होती है। दीर्घ काल तक पशुओं को ऐसा आहार खिलाने से स्वास्थ्य एवं दूध उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। आधुनिक पशु आहार संयंत्र में विभिन्न मुख्य तत्वों को मिलाकर एक वैज्ञानिक तरीके से पशु आहार तैयार किया जाता है। यदि यह आहार पशु को उनकी जरूरत के हिसाब से नियमित तौर पर खिलाया जाए तो उनकी आनुवांशिक क्षमता का अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

पशुओं में थनैला रोग की रोकथाम के विभिन्न उपाय

[1]राजेन्द्र यादव, [2] विनय कुमार एवं [3] पंकज कुमार

[1]क्षेत्रीय पशु रोग चिकित्सा, निदान एवं विस्तार केन्द्र, महेन्द्रगढ़

[2]पशु जैव प्रौद्योगिकि विभाग, [3]रोग निदान प्रयोगशाला, रोहतक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

थनैला रोग दुधारू पशुओं के अयन/गादी/लेवटी, थनों को प्रभावित करने वाली समस्या है, जो कि समस्त पशु प्रजातियों के मादा पशुओं जैसे कि गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँटनी, सुकर एवं श्वान इत्यादि में देखने को मिलता है परन्तु ज्यादातर यह रोग गाय एवं भैंस में पाया जाता है। अधिकांशतः यह रोग जीवाणु संक्रमण के कारण होता है। प्रसारण संक्रमित पानी, बिछावन, पशुओं के लिए उपयोग में लाए जाने वाले उपकरण (बर्तन, दूध निकालने की मशीन इत्यादि) एवं दूध दोहने वाले व्यक्ति के हाथों से हो सकता है। पशुशाला में पाई गई अस्वच्छता, गन्दगी या थनों की चोट एवं अपूर्ण दूध निकालना पशु को इस रोग के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। सामान्यतः दुग्धकाल के प्रारम्भ एवं अन्त में थनैला रोग होने की संभावना ज्यादा होती है। व्यस्क/अधिक आयु वाले पशु इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं।

रोग से प्रभावित पशुओं में पाये जाने वाले लक्षणों में दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में गिरावट, गादी या थनों में सूजन एवं दर्द दूध में छिछड़े या खून आना या कई बार तो बिलकुल भी दूध ना आना या दूध की जगह पानी जैसा पदार्थ निकलना पशु की लेवटी/गादी या थनों का पत्थर की तरह सख्त हो जाना या गादी और थनों में गाँठ बन जाना तथा कई बार पशु को बुखार आना एवं भूख का कम हो जाना इत्यादि हो सकते हैं। बहुत बार पशुओं में अलाक्षणिक थनैला भी देखने को मिलता है, जिसमें केवल पशु के दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में काफी कमी देखने को मिलती है। अलाक्षणिक थनैला की वजह से पशुपालकों को ज्यादा आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है, क्योंकि लक्षणविहीन होने के कारण पशुपालकों का ज्यादा ध्यान इस तरफ नहीं जा पाता है एवं समय पर उचित उपचार नहीं हो पाता है। दुधारू पशुओं में ऊपर दिए गए कोई भी लक्षण दिखाई देने पर पशु का दूध नजदीकी पशु रोग जाँच प्रयोगशाला में जाँच करवाकर भी थनैला रोग का पता करवाया जा सकता है एवं पशु–चिकित्सक से उचित ईलाज करवाना चाहिए। उपचार में देरी करने पर यह रोग बढ़ सकता है तथा इसके पूरी तरह से ठीक होने की संभावना कम हो जाती है, एवं पशु के एक या एक से अधिक थनों के खराब होने की संभावना रहती है। पशुओं में होने वाला थनैला रोग भारत देश में ही नहीं बल्कि दुनियाभर में पशुओं में होने वाली सबसे मंहगी बीमारियों में से एक है, जिसकी वजह से पशुपालकों को बहुत भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इसके अलावा कई बार थनैला रोग के जिम्मेदार जीवाणुओं की वजह से मनुष्यों में भी कई प्रकार के रोग होने का खतरा बना रहता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए पशुपालकों को चाहिए कि वो अपने पशुओं को थनैला रोग से बचाने के लिए निम्नलिखित उपायों का ध्यान रखें –

1. पशुओं में थनैला रोग की रोकथाम के लिए स्वच्छता का विशेष महत्व है। अतः दुधारू पशुओं की साफ–सफाई, पशुशाला अथवा दुग्धशाला, बिछावन, पशुओं के लिए उपयोग में आने वाले उपकरण (बर्तन, दूध निकालने की मशीन), दूध दोहने वाले व्यक्ति के हाथ एवं कपड़े तथा पशुओं के आसपास के वातावरण की साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
2. दुधारू पशुओं का दूध रोज नियमित समय पर तथा पूरा निकालना चाहिए। पशु की लेवटी एवं थनों में दूध नहीं छोड़ना चाहिए।
3. पशुओं के दूध निकालने के सही तरीके का प्रयोग

करना चाहिए। दूध निकालने के दौरान अँगूठे का प्रयोग ना करते हुए हथेली का प्रयोग करके पूरी मुट्ठी भर कर दूध निकालना चाहिए।

4. पशु का दूध निकालने के बाद पशु–चिकित्सक की सलाह लेकर लाल दवाई या अन्य किसी भी जीवाणुरोधक औषधि के घोल से टीट–डीपींग करनी चाहिए।

5. दूध निकालने के पश्चात कम से कम आधा घंटा (30 मिनट) पशु को बैठने नहीं देना चाहिए, क्योंकि इस दौरान थनों के छिद्र खुले रहते हैं एवं जीवाणु थनों एवं लेवटी के अन्दर प्रवेश कर सकते हैं।

6. यदि किसी पशु का अगली ब्यांत तक दूध निकालना बन्द करना हो तो लेवटी का दूध सुखने के पश्चात पशु–चिकित्सक से परामर्श करके थनों में जीवाणु–प्रतिरोधक दवाई डालकर छोड़ना चाहिए।

7. पशुओं को नियमित रूप से संतुलित आहार के साथ–साथ खनिज मिश्रण भी देना चाहिए, ताकि पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बरकरार रहे। ऐसा करने से पशुओं में थनैला के साथ–साथ अन्य कोई रोग पनपने की संभावना भी कम रहती है।

8. ब्याने के तुरंत पश्चात पशु को पक्की कंक्रीट की फर्श पर ना रखें अन्यथा पशु की लेवटी एवं थनों में चोट लगने की संभावना रहती है, जिसकी वजह से थनैला रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। इसके अलावा भी पशुओं की लेवटी एवं थनों को किसी भी प्रकार की चोट लगने या घाव होने से बचाना चाहिए।

9. पशु के थनों के अन्दर बिना पशु–चिकित्सक की सलाह के कोई भी वस्तु या दवाई नहीं डालनी चाहिए।

10. नियमित रूप से समय–समय पर पशु का दूध पशु रोग जाँच प्रयोगशाला में जाँच करवाते रहना चाहिए।

11. यदि किसी पशु को थनैला रोग हो गया हो तो उसका दूध नजदीकी पशु रोग जाँच प्रयोगशाला में जाँच करवाकर अपने पशु–चिकित्सक से ऐसे पशु का उचित एवं पूरा ईलाज करवाना चाहिए। उपचार के दौरान भी ऐसे पशु का पूरा दूध निकालना चाहिए तथा पशुशाला या दुग्धशाला से दूर ले जाकर मिट्टी में दबा देना चाहिए। रोगग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए एवं ऐसे पशु का दूध सबसे आखिर में निकालें। रोगग्रस्त पशु का दूध निकालने के लिए मशीन का प्रयोग भी बंद कर देना चाहिए नही ंतो थनैला रोग मशीन के द्वारा अन्य पशुओं में भी फैल सकता है। यदि किसी पशु के एक या दो थनों में थनैला रोग हुआ हो तो अच्छे थनों का दूध पहले निकालें।

12. जिन कारणों की वजह से थनैला रोग होने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं, उनका खास ध्यान रखना चाहिए, जैसे कि पशु के थनों या लेवटी पर चोट लगना, ज्यादा दूध देने वाले पशु, पशु की लेवटी या थनों का ज्यादा नीचे लटके हुए होना, ब्यानें के तुरंत पश्चात पशु को अन्य रोग (दुग्ध ज्वर, जेर ना गिराना एवं बच्चेदानी का संक्रमण इत्यादि) होना।

13. उपरोक्त सभी उपायों के पश्चात भी अगर पशुपालकों को अपने दुधारू पशुओं में थनैला रोग के लक्षण या पशुओं की लेवटी या थनों पर किसी भी प्रकार के असामान्य लक्षण दिखाई देते हैं, तो तुरंत ऐसे पशु का दूध नजदीकी पशु रोग जाँच प्रयोगशाला में जाँच करवाकर अपने पशु–चिकित्सक से पशु का उचित एवं पूरा उपचार करवाएं।

किसान अदालत

किसान अदालत

अम्बे
स्वामी रसगुल्ला भण्डार

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार – 125004 (हरियाणा)